

# निर्गुण भक्ति काव्य

## संदर्भ और दृष्टि

(Nirguna Bhakti Poetry: Reference and Vision)

चंदन कुमार

निर्गुण भक्ति काव्य  
संदर्भ और दृष्टि



**निर्गुण भक्ति काव्य**  
**संदर्भ और दृष्टि**  
**(Nirguna Bhakti Poetry**  
**Reference and Vision)**

चंदन कुमार

**भाषा प्रकाशन**  
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5563-2

प्रथम संस्करण : 2021

**भाषा प्रकाशन**

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,  
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

---

## प्रस्तावना

---

---

मानव समुदाय में आस्था स्थापित करने और उसे अपनाते के लिए कई संतों ने निर्गुण-सगुण साधना को अपनाया। इसमें अवतारवाद को स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप सगुण साधना को एक साकार आलम्बन मिल जाता है, जिसके कारण उसे सामान्य अशिक्षित व्यक्ति भी सहज ही स्वीकार कर सकता है। निर्गुण साधना का आलम्बन निराकार है, फलस्वरूप वह जन साधारण के लिए ग्राह्य नहीं हो सकती। सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से सगुण साधना-निर्गुण साधना की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। किन्तु इस आधार पर निर्गुण साधना की सत्ता या महत्त्व के विषय में संदेह नहीं किया जा सकता। हालांकि यह सत्य है कि सगुण साधना में आस्था रखने वाले साधकों ने निर्गुण साधना को लेकर तरह-तरह की शंकाएं उठायी हैं। उनका मूल तर्क है कि निर्गुण ब्रह्मज्ञान का विषय तो हो सकता है किन्तु भक्ति साधना का नहीं, क्योंकि साधना तो किसी साकार मूर्त और विशिष्ट के प्रति ही उन्मुख हो सकती है। सामान्य जनता का विश्वास और आचरण भी इसी तर्क की पुष्टि करता दिखाई देता है। साधना के व्यक्तित्व स्वरूप के संबंध में कहें तो 'स्नेह पूर्वक ध्यान ही साधना है', तो दूसरी ओर यदि स्नेह पूर्वक ध्यान ही साधना है तो फिर निर्गुण की साधना में स्नेह पूर्वक ध्यान क्यों नहीं किया जा सकता?

सामान्य रूप से यह माना जाता है कि निर्गुण साधना का संबंध ज्ञान मार्ग के साथ है और सगुण साधना का भक्ति के साथ। इसलिए जब कोई निर्गुण साधना की बात करता है तो जन समुदाय का ध्यान नैसर्गिक रूप से ज्ञान-मार्ग की ओर जाता है, भक्ति मार्ग की ओर नहीं, और इस प्रकार सगुण ब्रह्म का

उल्लेख करते ही भक्ति मार्ग अपनी समग्र पूजा-विधि के साथ उपस्थित हो जाता है। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि भक्ति और पूजा-अर्चना अभेद माने जाने लगे। मंदिरों में जाना, भगवान पर दीप, अर्घ्य आदि चढ़ाना, मूर्ति की सेवा करना और उसकी आरती आदि उतारना साधना के अभिन्न अंग माने जाने लगे।

संत मत के अनुसार आत्मा-परमात्मा का अंश है। ज्ञानपूर्ण भक्ति को कबीर राम, सत्यपुरुष, अलख निरंजन, स्वामी और शून्य आदि से पुकारते हैं। निर्गुण की उपासना, मिथ्याडंबर का विरोध, गुरु की महत्ता, जाति-पाति के भेदभाव का विरोधा, वैयक्तिक साधना पर जोर, रहस्यवादी प्रवृत्ति, साधारण धर्म का प्रतिपादन, विरह की मार्मिकता, नारी के प्रति दोहरा दृष्टिकोण, भजन, नामस्मरण, संतप्त, उपेक्षित, उत्पीड़ित मानव को परिज्ञान प्रदान करना आदि संत काव्य के मुख्य प्रयोजन हैं।

संत शाखा के आराध्य राम तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

—लेखक

---

# अनुक्रम

---

<b>प्रस्तावना</b>	<b>v</b>
<b>1. भक्ति काल</b>	<b>1</b>
हिन्दू साहित्य का भक्ति काल	2
कृष्णाश्रयी शाखा	7
<b>2. कबीर</b>	<b>14</b>
जन्म	15
बचपन	17
जुलाहा	17
शिक्षा	18
वैवाहिक जीवन	18
गुरु दीक्षा	19
समकालीन सामाजिक परिस्थिति	22
साहित्यिक परिचय	22
कबीर की भाषा शैली	22
पंचमेल खिचड़ी भाषा	24
हजारी प्रसाद द्विवेदी	24
कबीरदास का भक्त रूप	26
कबीर की रचनाएँ	27
बीजक	28
कबीर रचनावली	28
अवधू और अवधूत	29



कबीर साहित्य: कबीर चिंतन	56
<b>3. रविदास</b>	<b>61</b>
संत रविदास जयंती	61
संत रविदास से संबंधित तथ्य	106
रविदास की जीवनी	107
बेगमपुरा शहर से उनके संबंध	109
संत रविदास का सकारात्मक नजरिया	114
कुंभ उत्सव पर एक कार्यक्रम	115
संत रविदास की मृत्यु	116
<b>4. धरमदास</b>	<b>118</b>
परिचय	118
<b>5. सुंदरदास</b>	<b>124</b>
<b>6. दादूदयाल</b>	<b>126</b>
जीवन परिचय	126
विभिन्न मतों के अनुसार	127
दादू के गुरु	131
निर्गुण संत	134
दादू के शिष्य	134
दादू दयाल के विरोधी	135
दादू का व्यक्तित्व	139
जीवन काल	140
जीवन स्थली	140
<b>7. गुरु नानक</b>	<b>153</b>
ननकाना साहिब	153
परिचय	154
आरंभिक जीवन	154
बचपन	155
विवाह	155
भक्त कवि गुरु नानक	158
निर्गुण उपासना	158
विद्यालय जाते हुए बालक नानक	160

# 1

---

## भक्ति काल

---

भक्ति काल अपना एक अहम और महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को पूर्व मध्यकाल भी कहा जाता है, जिसकी समयावधि संवत् 1343 ई. से संवत् 1643 ई. तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य (साहित्यिक दो प्रकार के हैं- धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य) का श्रेष्ठ युग है, जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्णकाल, श्यामसुन्दर दास ने स्वर्णयुग, आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने भक्ति काल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया:

**जाति-पाति पृछे नहिं कोई।  
हरि को भजै सो हरि का होई॥**

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे

हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

इसके उपरान्त माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गईं।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं—  
 रामाश्रयी शाखा  
 कृष्णाश्रयी शाखा  
 ज्ञानाश्रयी शाखा  
 प्रेमाश्रयी शाखा

## हिन्दू साहित्य का भक्ति काल

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल 1375 ई. से 1700 ई. तक माना जाता है। यह युग भक्तिकाल के नाम से प्रख्यात है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है। समस्त हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इस युग में प्राप्त होती हैं।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया।

जाति-पाति पूछे नहीं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई॥

## संत कवि

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों का परिचय कबीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरु नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी।

## परिचय

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञान संपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्ष विधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचारप्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँचीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों - कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान

दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए - ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ - रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणालियों की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सबमें है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर निर्गुणोपासक कबीर अपने अने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में प्रचसित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधाना के

मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरु या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यतः यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं। इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंज़न, उसमान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यतः सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्टलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए

अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्टी संप्र.), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वतः स्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोलित करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान के मधुर रूप का उद्घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्त्व को महत्त्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्त्व भगवान के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है, जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता है। उसमें भगवान राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका'

में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्चल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्त्व उसके धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

### कृष्णाश्रयी शाखा

इस गुण की इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार हुआ है। विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के सूरदास कुम्भनदास रसखान जैसे महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवं शृंगार के सर्वोत्तम भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का ही प्राधान्य रहा है। प्रायः सब कवि गायक थे इसलिए कविता और संगीत का अद्भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। गीति-काव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी उसका चरम-विकास इन कवियों द्वारा हुआ है। नर-नारी की साधारण प्रेम-लीलाओं को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेमलीला द्वारा व्यंजित करके उन्होंने जन-मानस को रसाप्लावित कर दिया। आनंद की एक लहर देश भर में दौड़ गई। इस शाखा के प्रमुख कवि थे सूरदास, नंददास, मीरा बाई, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, नरोत्तमदास वगैरह। रहीम भी इसी समय हुए।

### कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य-धारा के मुख्य प्रवर्तक हैं- श्री वल्लभाचार्य। उन्होंने निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर श्रीकृष्ण का प्रचार किया।



श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। जिसका अर्थ है- भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति से उनकी कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति करना।

कृष्ण-काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. श्रीकृष्ण-साहित्य का मुख्य विषय कृष्ण की लीलाओं का गान करना है। वल्लभाचार्य के सिद्धांतों से प्रभावित होकर इस शाखा के कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का ही अधिक वर्ण किया है। सूरदास इसमें प्रमुख है।
2. इस शाखा में वात्सल्य एवं माधुर्य भाव का ही प्राधान्य है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं तथा माँ यशोदा के हृदय की झाँकी मिलती है। माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला मुख्य है। सूरदास के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- वात्सल्य के क्षेत्र में जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, इतना किसी ओर कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का तो वे कोना-कोना झाँक आये।
3. इस धारा के कवियों ने भगवान कृष्ण की उपासना माधुर्य एवं सख्य भाव से की है। इसीलिए इसमें मर्यादा का चित्रण नहीं मिलता।
4. श्रीकृष्ण काव्य में मुक्त रचनाएँ ही अधिक पाई जाती हैं। काव्य-रचना के अधिकांशतः उन्होंने पद ही चुने हैं।
5. इस काव्य में गीति-काव्य की मनोहारिणी छटा है। इसका कारण है- कृष्ण-काव्य की संगीतात्मकता। कृष्ण-काव्य में राग-रागिनियों का सुंदर उपयोग हुआ है।
6. श्रीकृष्ण काव्य में विषय की एकता होने के कारण भावों में अधिकतर एकरूपता पाई जाती है।
7. श्रीकृष्ण को भगवान मानकर पदों की विनयावली द्वारा पूजा जाने के कारण इसमें भावुकता की तीव्रता अधिक पाई जाती है।
8. इस काव्य-धारा में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
9. कृष्ण-काव्य-धारा की भाषा ब्रज है। ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली का प्रयोग इसमें हुआ है। यह मधुर और सरस है।
10. इस काव्य में रसमयी उक्तियों के लिए तथा साकार ईश्वर के प्रतिपादन के लिए भ्रमरगीत लिखने की परंपरा प्राप्त होती है।

11. श्रीकृष्ण-काव्य स्वतंत्र प्रेम-प्रधान काव्य है। इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाया है। इसलिए इसमें मर्यादा की अवहेलना की गई है।
12. कृष्ण-काव्य व्यंग्यात्मक है। इसमें उपालंभ की प्रधानता है। सूर का भ्रमरगीत इसका सुंदर उदाहरण है।
13. श्रीकृष्ण काव्य में लोक-जीवन के प्रति उपेक्षा की भावना पाई जाती है। इसका मुख्य कारण है- कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता।
14. श्री कृष्ण-काव्य-धारा में ज्ञान और कर्म के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई है। इसमें आत्म-चिंतन की अपेक्षा आत्म-समर्पण का महत्त्व है।
15. प्रकृति-वर्णन भी इस धारा में मिलता है। ग्राम्य-प्रकृति के सुंदर चित्र इसमें हैं।

### रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला-पुरुषोत्तम का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा-पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहा। इसलिए आपने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरित मानस' द्वारा राम-कथा को घर-घर में पहुंचा दिया। तुलसीदास हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। समन्वयवादी तुलसीदास में लोकनायक के सब गुण मौजूद थे। आपकी पावन और मधुर वाणी ने जनता के तमाम स्तरों को राममय कर दिया। उस समय प्रचलित तमाम भाषाओं और छंदों में आपने रामकथा लिख दी। जन-समाज के उत्थान में आपने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस शाखा में अन्य कोई कवि तुलसीदास के सम। न उल्लेखनीय नहीं है तथापि अग्रदास, नाभादास तथा प्राण चन्द चौहान भी इस श्रेणी में आते हैं।

रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ रामकाव्य धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि रामकाव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम-काव्य और नाटक रहें हैं। इस काव्य धारा के अवलोकन से इसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं –

राम का स्वरूप-रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद के अनुयायी सभी रामभक्त कवि विष्णु के अवतार दशरथ-पुत्र राम के उपासक हैं। अवतारवाद में विश्वास है। उनके राम परब्रह्म स्वरूप हैं। उनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। सौंदर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा करते हैं तथा गुणों से संसार को आचार की

शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक हैं। भक्ति का स्वरूप—इनकी भक्ति में सेवक—सेव्य भाव है। वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं। वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान को महान बतलाते हैं। तुलसीदास ने लिखा है—सेवक—सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि। राम—काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक—पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना है—भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा। यद्यपि वे ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति का रूप वैधी रहा है, वह वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है।

लोक—मंगल की भावना—रामभक्ति साहित्य में राम के लोक—रक्षक रूप की स्थापना हुई है। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं। इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की सर्जना हुई है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं तो भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं। कौशल्या आदर्श माता है, हनुमान आदर्श सेवक हैं। इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसी ने आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज और आदर्श राज्य की कल्पना की है। आदर्श की प्रतिष्ठा से ही तुलसी लोकनायक कवि बन गए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है। समन्वय भावना—तुलसी का मानस समन्वय की विराट चेष्टा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में - उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस में शुरु से आखिर तक समन्वय का काव्य है। हम कह सकते हैं कि तुलसी आदि रामभक्त कवियों ने समाज, भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार किया है। राम भक्त कवियों की भारतीय संस्कृति में पूर्ण आस्था रही। पौराणिकता इनका आधार है और वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक हैं।

लोकहित के साथ—साथ इनकी भक्ति स्वांतः सुखाय थी। सामाजिक तत्त्व की प्रधानता रही। काव्य शैलियाँ—रामकाव्य में काव्य की प्रायः सभी शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीदास ने अपने युग की प्रायः सभी काव्य—शैलियों को अपनाया है। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीतिपद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त—सवैया पद्धति, जायसी की दोहा पद्धति, सभी का सफलतापूर्वक प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। रामायण महानाटक (

प्राणचंद चौहान) और हनुमननाटक (हृदयराम) में संवाद पद्धति और केशव की रामचंद्रिका में रीति-पद्धति का अनुसरण है। रस-रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन इतना विस्तृत व विविध है कि उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। तुलसी के मानस एवं केशव की रामचंद्रिका में सभी रस देखे जा सकते हैं। रामभक्ति के रसिक संप्रदाय के काव्य में शृंगार रस को प्रमुखता मिली है। मुख्य रस यद्यपि शांत रस ही रहा। भाषा-रामकाव्य में मुख्यतः अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का शृंगार बनी है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। बुंदेली, भोजपुरी, फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। रामचरितमानस की अवधी प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है। छंद-रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई में हुई है। दोहा चौपाई प्रबंधात्मक काव्यों के लिए उत्कृष्ट छंद हैं। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सोरठा, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

अलंकार-रामभक्त कवि विद्वान पंडित हैं। इन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की। तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का प्रयोग मानस में अधिक है।

### ज्ञानाश्रयी मार्गी

इस शाखा के भक्त-कवि निर्गुणवादी थे और राम की उपासना करते थे। वे गुरु को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति-पाँति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढ़ियों का वे विरोध करते थे। लगभग सब संत अपढ़ थे परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे। प्रायः सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत-कवियों के नाम हैं - नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने निर्गुण भक्ति के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठाए हैं तथा प्रतिपादित किया है कि संतों की निर्गुण भक्ति का अपना स्वरूप है जिसको वेदांत दर्शन के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके शब्द हैं-

भक्ति या उपासना के लिए गुणों की सत्ता आवश्यक है। ब्रह्म के सगुण स्वरूप को आधार बनाकर तो भक्ति/उपासना की जा सकती है किन्तु जो निर्गुण एवं निराकार है उसकी भक्ति किस प्रकार सम्भव है ? निर्गुण के गुणों का आख्यान किस प्रकार किया जा सकता है ? गुणातीत में गुणों का प्रवाह किस प्रकार माना जा सकता है ? जो निरालम्ब है, उसको आलम्बन किस प्रकार बनाया जा सकता है। जो अरूप है, उसके रूप की कल्पना किस प्रकार सम्भव है। जो रागातीत है, उसके प्रति रागों का अर्पण किस प्रकार किया जा सकता है ? रूपातीत से मिलने की उत्कंठा का क्या औचित्य हो सकता है। जो नाम से भी अतीत है, उसके नाम का जप किस प्रकार किया जा सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रश्न 'निर्गुण-भक्ति' के स्वरूप को ताल ठोंककर चुनौती देते हुए प्रतीत होते हैं। कबीर आदि संतों की दार्शनिक विवेचना करते समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह मान्यता स्थापित की है कि उन्होंने निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा है। इस सम्बन्ध में जब हम शांकर अद्वैतवाद एवं संतों की निर्गुण भक्ति के तुलनात्मक पक्षों पर विचार करते हैं तो उपर्युक्त मान्यता की सीमायें स्पष्ट हो जाती हैं—

- (क) शांकर अद्वैतवाद में भक्ति को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु उसे साध्य नहीं माना गया है। संतों ने (सूफियों ने भी) भक्ति को साध्य माना है।
- (ख) शांकर अद्वैतवाद में मुक्ति के प्रत्यक्ष साधन के रूप में 'ज्ञान' को ग्रहण किया गया है। वहाँ मुक्ति के लिए भक्ति का ग्रहण अपरिहार्य नहीं है। वहाँ भक्ति के महत्त्व की सीमा प्रतिपादित है। वहाँ भक्ति का महत्त्व केवल इस दृष्टि से है कि वह अन्तःकरण के मालिन्य का प्रक्षालन करने में समर्थ सिद्ध होती है। भक्ति आत्म-साक्षात्कार नहीं करा सकती, वह केवल आत्म साक्षात्कार के लिए उचित भूमिका का निर्माण कर सकती है। संतों ने अपना चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार या भगवद्-दर्शन माना है तथा भक्ति के ग्रहण को अपरिहार्य रूप में स्वीकार किया है क्योंकि संतों की दृष्टि में भक्ति ही आत्म-साक्षात्कार या भगवद्दर्शन कराती है।

### प्रेमाश्रयी शाखा

मुसलमान सूफी कवियों की इस समय की काव्य-धारा को प्रेममार्गी माना गया है क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होते हैं ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की

तरह प्रेम भी सर्वव्यापी तत्त्व है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यह उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है। उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू-जीवन से संबंधित कथाएं लिखी हैं। खंडन-मंडन में न पड़कर इन फकीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है। ईश्वर को माशूक माना गया है और प्रायः प्रत्येक गाथा में कोई राजकुमार किसी राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नानाविध कष्टों का सामना करता है, विविध कसौटियों से पार होता है और तब जाकर माशूक को प्राप्त कर सकता है। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख हैं। आपका 'पद्मावत' महाकाव्य इस शैली की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य कवियों में प्रमुख हैं - मंज़न, कुतुबन और उसमान।

# 2

---

## कबीर

---

कबीर (जन्म- सन् 1398 काशी - मृत्यु- सन् 1518 मगहर) का नाम कबीरदास, कबीर साहब एवं संत कबीर जैसे रूपों में भी प्रसिद्ध है। ये मध्यकालीन भारत के स्वाधीनचेता महापुरुष थे और इनका परिचय, प्रायः इनके जीवनकाल से ही, इन्हें सफल साधक, भक्त कवि, मतप्रवर्तक अथवा समाज सुधारक मानकर दिया जाता रहा है तथा इनके नाम पर कबीरपंथ नामक संप्रदाय भी प्रचलित है। कबीरपंथी इन्हें एक अलौकिक अवतारी पुरुष मानते हैं और इनके संबंध में बहुत-सी चमत्कारपूर्ण कथाएँ भी सुनी जाती हैं। इनका कोई प्रामाणिक जीवनवृत्त आज तक नहीं मिल सका, जिस कारण इस विषय में निर्णय करते समय, अधिकतर जनश्रुतियों, सांप्रदायिक ग्रंथों और विविध उल्लेखों तथा इनकी अभी तक उपलब्ध कतिपय फुटकल रचनाओं के अंतःसाध्य का ही सहारा लिया जाता रहा है। फलतः इस संबंध में तथा इनके मत के भी विषय में बहुत कुछ मतभेद पाया जाता है।

संत कबीर दास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के इकलौते ऐसे कवि हैं, जो आजीवन समाज और लोगों के बीच व्याप्त आडंबरों पर कुठाराघात करते रहे। वह कर्म प्रधान समाज के पैरोकार थे और इसकी झलक उनकी रचनाओं में साफ झलकती है। लोक कल्याण हेतु ही मानो उनका समस्त जीवन था। कबीर को वास्तव में एक सच्चे विश्व-प्रेमी का अनुभव था। कबीर की सबसे बड़ी विशेषता उनकी प्रतिभा में अबाध गति और अदम्य प्रखरता थी। समाज में कबीर को जागरण युग का अग्रदूत कहा जाता है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि साधना के क्षेत्र में वे युग-युग के गुरु थे, उन्होंने संत काव्य का पथ प्रदर्शन कर साहित्य क्षेत्र में नव निर्माण किया था।

## जन्म

कबीरदास के जन्म के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कबीर पन्थियों की मान्यता है कि कबीर का जन्म काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद के प्रभाव से उन्हें हिन्दू धर्म की बातें मालूम हुईं। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगा स्नान करने के लिये सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-

हम कासी में प्रकट भये हैं,

रामानन्द चेताये।

कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।

जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।

घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरषें झर लाग गए।

लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए।

## जन्मस्थान

कबीर के जन्मस्थान के संबंध में तीन मत हैं—मगहर, काशी और आजमगढ़ में बेलहरा गाँव।

मगहर के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि कबीर ने अपनी रचना में वहाँ का उल्लेख किया है— पहिले दरसन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई अर्थात् काशी में रहने से पहले उन्होंने मगहर देखा। मगहर आजकल वाराणसी के निकट ही है और वहाँ कबीर का मकबरा भी है।

कबीर का अधिकांश जीवन काशी में व्यतीत हुआ। वे काशी के जुलाहे के रूप में ही जाने जाते हैं। कई बार कबीरपंथियों का भी यही विश्वास है कि



कबीर का जन्म काशी में हुआ। किंतु किसी प्रमाण के अभाव में निश्चयात्मकता अवश्य भंग होती है।

बहुत से लोग आजमगढ़ जिले के बेलहरा गाँव को कबीर साहब का जन्मस्थान मानते हैं।

वे कहते हैं कि 'बेलहरा' ही बदलते-बदलते लहरतारा हो गया। फिर भी पता लगाने पर न तो बेलहरा गाँव का ठीक पता चला पाता है और न यही मालूम हो पाता है कि बेलहरा का लहरतारा कैसे बन गया और वह आजमगढ़ जिले से काशी के पास कैसे आ गया ? वैसे आजमगढ़ जिले में कबीर, उनके पंथ या अनुयायियों का कोई स्मारक नहीं है।

### माता-पिता

कबीर के माता-पिता के विषय में भी एक राय निश्चित नहीं है। 'नीमा' और 'नीरु' की कोख से यह अनुपम ज्योति पैदा हुई थी, या लहर तालाब के समीप विधवा ब्राह्मणी की पाप-संतान के रूप में आकर यह पतितपावन हुए थे, ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता है। कई मत यह है कि नीमा और नीरु ने केवल इनका पालन-पोषण ही किया था। एक किवदंती के अनुसार कबीर को एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र बताया जाता है, जिसको भूल से रामानंद जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था।

एक जगह कबीर ने कहा है —

**'जाति जुलाहा नाम कबीरा  
बनि बनि फिरो उदासी।'**

कबीर के एक पद से प्रतीत होता है कि वे अपनी माता की मृत्यु से बहुत दुरूखी हुए थे। उनके पिता ने उनको बहुत सुख दिया था। वह एक जगह कहते हैं कि उसके पिता बहुत 'गुसाई' थे। ग्रंथ साहब के एक पद से विदित होता है कि कबीर अपने वयनकार्य की उपेक्षा करके हरिनाम के रस में ही लीन रहते थे। उनकी माता को नित्य कोश घड़ा लेकर लीपना पड़ता था। जबसे कबीर ने माला ली थी, उसकी माता को कभी सुख नहीं मिला। इस कारण वह बहुत खीज गई थी। इससे यह बात सामने आती है कि उनकी भक्ति एवं संत-संस्कार के कारण उनकी माता को कष्ट था।

## बचपन

कबीरदास का लालन-पालन जुलाहा परिवार में हुआ था, इसलिए उनके मत का महत्वपूर्ण अंश यदि इस जाति के परंपरागत विश्वासों से प्रभावित रहा हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यद्यपि 'जुलाहा' शब्द फारसी भाषा का है, तथापि इस जाति की उत्पत्ति के विषय में संस्कृत पुराणों में कुछ-न-कुछ चर्चा मिलती ही है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्म खंड के दसवें अध्याय में बताया गया है कि म्लेच्छ से कुविंदकन्या में 'जोला' या जुलाहा जाति की उत्पत्ति हुई है। अर्थात् म्लेच्छ पिता और कुविंद माता से जो संतति हुई वही जुलाहा कहलाई।

## जुलाहा

जुलाहे मुसलमान हैं, पर इनसे अन्य मुसलमानों का मौलिक भेद है। सन् 1901 की मनुष्य-गणना के आधार पर रिजली साहब ने 'पीपुल्स ऑफ इंडिया' नामक एक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ में उन्होंने तीन मुसलमान जातियों की तुलना की थी। वे तीन हैं— सैयद, पठान और जुलाहे। इनमें पठान तो भारतवर्ष में सर्वत्र फैले हुए हैं पर उनकी संख्या कहीं भी बहुत अधिक नहीं है। जान पड़ता है कि बाहर से आकर वे नाना स्थानों पर अपनी सुविधा के अनुसार बस गए। पर जुलाहे पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में ही पाए जाते हैं। जिन दिनों कबीरदास इस इस जुलाहा-जाति को अलंकृत कर रहे थे उन दिनों, ऐसा जान पड़ता है कि इस जाति ने अभी एकाध पुश्त से ही मुसलमानी धर्म ग्रहण किया था। कबीरदास की वाणी को समझने के लिए यह निहायत जरूरी है कि हम इस बात की जानकारी प्राप्त कर ले कि उन दिनों इस जाति के बचे-कुचे पुराने संस्कार क्या थे।

उत्तर भारत के वयनजीवियों में कोरी मुख्य हैं। बेन्स जुलाहों को कोरियों की समशील जाति ही मानते हैं। कुछेक पंडितों ने यह भी अनुमान किया है कि मुसलमानी धर्म ग्रहण करने वाले कोरी ही जुलाहे हैं। यह उल्लेख किया जा सकता है कि कबीरदास जहाँ अपने को बार-बार जुलाहा कहते हैं,

- (1) जाति जुलाहा मति कौ धीर। हरषि गुन रमै कबीर।
- (2) तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा।

वहाँ कभी-कभी अपने को कोरी भी कह गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि कबीरदास के युग में जुलाहों ने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था पर साधारण जनता में तब भी कोरी नाम से परिचित थे।

सबसे पहले लगने वाली बात यह है कि कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे बराबर अपने को 'ना-मुसलमान' कहते रहे। आध्यात्मिक पक्ष में निस्संदेह यह बहुत ऊँचा भाव है, पर कबीरदास ने कुछ इस ढंग से अपने को उभय-विशेष बताया है कि कभी-कभी यह संदेह होता है कि वे आध्यात्मिक सत्य के अतिरिक्त एक सामाजिक तथ्य की ओर भी इशारा कर रहे हैं। उन दिनों वयनजीवी नाथ-मतावलंबी गृहस्थ योगियों की जाति सचमुच ही 'ना-हिंदू ना-मुसलमान' थी। कबीरदास ने कम-से-कम एक पद में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि हिंदू और हैं, मुसलमान और हैं और योगी और हैं, क्योंकि योगी या जोगी 'गोरख-गोरख करता है, हिंदू 'राम-राम' उच्चारता है और मुसलमान 'खुदा-खुदा' कहा करता है।

## शिक्षा

कबीर बड़े होने लगे। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे- अपनी अवस्था के बालकों से एकदम भिन्न रहते थे। कबीरदास की खेल में कोई रुचि नहीं थी। मदरसे भेजने लायक साधन पिता-माता के पास नहीं थे। जिसे हर दिन भोजन के लिए ही चिंता रहती हो, उस पिता के मन में कबीर को पढ़ाने का विचार भी न उठा होगा। यही कारण है कि वे किताबी विद्या प्राप्त न कर सके।

मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया।

## वैवाहिक जीवन

कबीर का विवाह वनखेड़ी बैरागी की पालिता कन्या 'लोई' के साथ हुआ था। कबीर को कमाल और कमाली नाम की दो संतान भी थी। ग्रंथ साहब के एक श्लोक से विदित होता है कि कबीर का पुत्र कमाल उनके मत का विरोधी था।

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।

हरि का सिमरन छोडि के, घर ले आया माल।

कबीर की पुत्री कमाली का उल्लेख उनकी बानियों में कहीं नहीं मिलता है। कहा जाता है कि कबीर के घर में रात - दिन मुडियों का जमघट रहने से

बच्चों को रोटी तक मिलना कठिन हो गया था। इस कारण से कबीर की पत्नी झुंझला उठती थी। एक जगह कबीर उसको समझाते हैं –

**सुनि अंघली लोई बंपीर।**

**इन मुड़ियन भजि सरन कबीर॥**

जबकि कबीर को कबीर पंथ में, बाल- ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार कामात्य उसका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या। लोई शब्द का प्रयोग कबीर ने एक जगह कंबल के रूप में भी किया है। वस्तुतः कबीर की पत्नी और संतान दोनों थे। एक जगह लोई को पुकार कर कबीर कहते हैं –

**‘कहत कबीर सुनहु रे लोई।**

**हरि बिन राखन हार न कोई॥’**

यह हो सकता हो कि पहले लोई पत्नी होगी, बाद में कबीर ने इसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने स्पष्ट कहा है –

**नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।**

**जब जानी तब परिहरि, नारी महा विकार॥**

## गुरु दीक्षा

कबीर जी ने सोचा कि गुरु किये बिना काम बनेगा नहीं। उस समय काशी में रामानन्द नाम के संत बड़े उच्च कोटि के महापुरुष माने जाते थे। कबीर जी ने उनके आश्रम के मुख्य द्वार पर आकर विनती की: ‘मुझे गुरुजी के दर्शन कराओ।’ उस समय जात-पाँत का बड़ा आग्रह रहता था। और फिर काशी ! वहाँ पण्डितों और पाण्डे लोगों का अधिक प्रभाव था। कबीर जी ने देखा कि हर रोज सुबह तीन-चार बजे स्वामी रामानन्द खड़ाऊँ पहनकर ‘टप...टप....’ आवाज करते गंगा में स्नान करने जाते हैं। कबीर जी ने गंगा के घाट पर उनके जाने के रास्ते में और सब जगह बाड़ कर दी। एक ही मार्ग रखा और उस मार्ग में सुबह के अन्धेरे में कबीर जी सो गये। गुरु महाराज आये तो अन्धेरे के कारण कबीर जी पर पैर पड़ गया। उनके मुख से उदगार निकल पड़े: ‘राम... राम... राम....।’ कबीर जी का तो काम बन गया। गुरुजी के दर्शन भी हो गये, उनकी पादुकाओं का स्पर्श भी मिल गया और गुरुमुख से रामनाम का मंत्र भी मिल गया। अब दीक्षा में बाकी ही क्या रहा ? कबीर जी नाचते, गाते, गुनगुनाते घर वापस आये। रामनाम की और गुरुदेव के नाम की रट लगा दी। अत्यंत स्नेहपूर्वक हृदय से गुरुमंत्र का

जप करते, गुरुनाम का कीर्तन करते साधना करने लगे। जो महापुरुष जहाँ पहुँचे हैं वहाँ की अनुभूति उनका भावपूर्ण हृदय से चिन्तन करने वाले को भी होने लगती है। काशी के पण्डितों ने देखा कि यवन का पुत्र कबीर रामनाम जपता है, रामानन्द के नाम का कीर्तन करता है ! उस यवन को रामनाम की दीक्षा किसने दी ? क्यों दी ? मंत्र को भ्रष्ट कर दिया ! पण्डितों ने कबीर से पूछा—

‘रामनाम की दीक्षा तेरे को किसने दी ?’

‘स्वामी रामानन्दजी महाराज के श्रीमुख से मिली।’

‘कहाँ दी ?’

‘सुबह गंगा के घाट पर।’

पण्डित रामानन्द जी के पास पहुँचे और कहा कि आपने यवन को राममंत्र की दीक्षा देकर मंत्र को भ्रष्ट कर दिया, सम्प्रदाय को भ्रष्ट कर दिया। गुरु महाराज ! यह आपने क्या किया ?

गुरु महाराज ने कहा— ‘मैंने तो किसी को दीक्षा नहीं दी।’

‘वह यवन जुलाहा तो रामानन्द..... रामानन्द.... मेरे गुरुदेव रामानन्द’ की रट लगाकर नाचता है, आपका नाम बदनाम करता है।’

‘भाई ! मैंने उसको कुछ नहीं कहा। उसको बुलाकर पूछा जाय। पता चल जायेगा।’

काशी के पण्डित इकट्ठे हो गये। कबीर जी को बुलाया गया। गुरु महाराज मंच पर विराजमान हैं। सामने विद्वान् पण्डितों की सभा बैठी है।

रामानन्दजी ने कबीर से पूछा: ‘मैंने तुझे कब दीक्षा दी ? मैं कब तेरा गुरु बना ?’

कबीर जी बोले: ‘महाराज ! उस दिन प्रभात को आपने मेरे को पादुका का स्पर्श कराया और राममंत्र भी दिया, वहाँ गंगा के घाट पर।’

रामानन्द जी कुपित से हो गये। कबीर जी को अपने सामने बुलाया और गरज कर बोले: ‘मेरे सामने तू झूठ बोल रहा है ? सच बोल....’

‘प्रभु ! आपने ही मुझे प्यारा रामनाम का मंत्र दिया था....’

रामानन्दजी को गुस्सा आ गया। खडाऊँ उठाकर दे मारी कबीर जी के सिर पर।

‘राम... राम...राम....! इतना झूठ बोलता है....।’

कबीर जी बोल उठे: ‘गुरु महाराज ! तबकी दीक्षा झूठी तो अबकी तो सच्ची...! मुख से रामनाम का मंत्र भी मिल गया और सिर में आपकी पावन पादुका का स्पर्श भी हो गया।’

स्वामी रामानन्द जी उच्च कोटि के संत-महात्मा थे। घड़ी भर भीतर गोता लगाया, शांत हो गये। फिर पण्डितों से कहा: 'चलो, यवन हो या कुछ भी हो, मेरा पहले नम्बर का शिष्य यही है।'

ब्रह्मनिष्ठ सत्पुरुषों की विद्या या दीक्षा प्रसाद खाकर मिले तो भी बेड़ा पार करती है और मार खाकर मिले तो भी बेड़ा पार कर देती है।

### मृत्यु

कबीर ने काशी के पास मगहर में देह त्याग दी। ऐसी मान्यता है कि मृत्यु के बाद उनके शव को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। हिन्दू कहते थे कि उनका अंतिम संस्कार हिन्दू रीति से होना चाहिए और मुस्लिम कहते थे कि मुस्लिम रीति से। इसी विवाद के चलते जब उनके शव पर से चादर हट गई, तब लोगों ने वहाँ फूलों का ढेर पड़ा देखा। बाद में वहाँ से आधे फूल हिन्दुओं ने ले लिए और आधे मुसलमानों ने। मुसलमानों ने मुस्लिम रीति से और हिंदुओं ने हिंदू रीति से उन फूलों का अंतिम संस्कार किया। मगहर में कबीर की समाधि है। जन्म की भाँति इनकी मृत्यु तिथि एवं घटना को लेकर भी मतभेद हैं, किन्तु अधिकतर विद्वान् उनकी मृत्यु संवत् 1575 विक्रमी (सन 1518 ई.) मानते हैं, लेकिन बाद के कुछ इतिहासकार उनकी मृत्यु 1448 को मानते हैं।

### हजारीप्रसाद द्विवेदी की कलम से

त्रिपुरा जिले के योगियों को पहले अग्निदाह करते हैं और फिर समाधि भी देते हैं अर्थात् मिट्टी में गाड़ भी देते हैं। कबीरदास के विषय में प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ फूल बच रहे थे जिनमें से आधे को हिन्दुओं ने जलाया और आधे को मुसलमानों ने गाड़ दिया। कई पंडितों ने इस को करामाती किंवदन्ती कहकर उड़ा दिया है, पर मेरा अनुमान है कि सचमुच ही कबीरदास को (त्रिपुरा जिले के वर्तमान योगियों की भाँति) समाधि भी दी गई होगी और उनका अग्नि-संस्कार भी किया गया होगा। यदि यह अनुमान सत्य है तो दृढ़ता के साथ ही कहा जा सकता है कि कबीरदास जिस जुलाहा जाति में पालित हुए थे वह एकाध पुश्त पहले के योगी जैसी किसी आश्रम-भ्रष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या अभी होने की राह में थी। जोगी जाति का संबंध नाथपंथी सिद्धांतों की जानकारी न हो, तो कबीर की वाणियों को समझ सकना भी मुश्किल है।

## समकालीन सामाजिक परिस्थिति

महात्मा कबीरदास के जन्म के समय में भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा शोचनीय थी। एक तरफ मुसलमान शासकों की धर्मान्धता से जनता परेशान थी और दूसरी तरफ हिन्दू धर्म के कर्मकांड, विधान और पाखंड से धर्म का ह्रास हो रहा था। जनता में भक्ति- भावनाओं का सर्वथा अभाव था। पंडितों के पाखंडपूर्ण वचन समाज में फैले थे। ऐसे संघर्ष के समय में, कबीरदास का प्रार्थुभाव हुआ। जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे, उसके कुछ ही पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इस्लाम जैसे एक सुसंगठित सम्प्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म-मत और समाज व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली जाति-व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था। बहुत-से पंडितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने-अपने ढंग पर भारतीय समाज और धर्म-मत को सम्भालने का प्रयत्न कर रहे थे।

## साहित्यिक परिचय

कबीर सन्त कवि और समाज सुधारक थे। उनकी कविता का एक-एक शब्द पाखंडियों के पाखंडवाद और धर्म के नाम पर ढोंग व स्वार्थपूर्ति की निजी दुकानदारियों को ललकारता हुआ आया और असत्य व अन्याय की पोल खोल धज्जियाँ उड़ाता चला गया। कबीर का अनुभूत सत्य अंधविश्वासों पर बारूदी पलीता था। सत्य भी ऐसा जो आज तक के परिवेश पर सवालिया निशान बन चोट भी करता है और खोट भी निकालता है।

## कबीर की भाषा शैली

कबीर सन्त कवि और समाज सुधारक थे। उनकी कविता का एक-एक शब्द पाखंडियों के पाखंडवाद और धर्म के नाम पर ढोंग व स्वार्थपूर्ति की निजी दुकानदारियों को ललकारता हुआ आया और असत्य व अन्याय की पोल खोल धज्जियाँ उड़ाता चला गया। कबीर का अनुभूत सत्य अंधविश्वासों पर बारूदी पलीता था। सत्य भी ऐसा जो आज तक के परिवेश पर सवालिया निशान बन चोट भी करता है और खोट भी निकालता है।

## भाषा और शैली

हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्दी जानता है, तुलसीदास।

## हजारी प्रसाद द्विवेदी

कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया-बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा फक्कड़ कि किसी फरमाइश को नहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत ही कम लेखकों में पाई जाती है। असीम-अनंत ब्रह्मानन्द में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है। पर 'बेहदी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गम्भीर निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानन्द का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्दी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधु और जोगिया, मुल्ला और मौलवी-सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि खानेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।

इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। कबीर ने जिन तत्त्वों को अपनी रचना से ध्वनित करना चाहा है, उसके लिए कबीर की भाषा से ज्यादा साफ और जोरदार भाषा की सम्भावना भी नहीं है और जरूरत भी नहीं है। परन्तु कालक्रम से वह भाषा आज के शिक्षित व्यक्ति को दुरूह जान पड़ती है। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परम्परा से चली आई विशेषताएँ वर्तमान हैं। इसका ऐतिहासिक कारण है। इस ऐतिहासिक कारण को



जाने बिना उस भाषा को ठीक-ठीक समझना सम्भव नहीं है। इस पुस्तक में उसी ऐतिहासिक परम्परा के अध्ययन का प्रयास है। यह प्रयास पूर्ण रूप से सफल ही हुआ होगा, ऐसा हम कोई दावा नहीं करते, परन्तु वह ग्रहणीय नहीं है, इस बात में लेखक को कोई सन्देह नहीं है।

### पंचमेल खिचड़ी भाषा

कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। इसी व्यक्तित्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती हैं। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक सम्भाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को 'कवि' कहने में संतोष पाता है।

### हजारी प्रसाद द्विवेदी

कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं यथा - अरबी, फारसी, पंजाबी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्द मिलते हैं इसलिए इनकी भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है। प्रसंग क्रम से इसमें कबीरदास की भाषा और शैली समझाने के कार्य से कभी-कभी आगे बढ़ने का साहस किया गया है। जो वाणी के अगोचर हैं, उसे वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है, जो मन और बुद्धि की पहुँच से परे हैं, उसे बुद्धि के बल पर समझने की कोशिश की गई है, जो देश और काल की सीमा के परे हैं, उसे दो-चार-दस पृष्ठों में बाँध डालने की साहसिकता दिखाई गई है। कहते हैं, समस्त पुराण और महाभारतीय संहिता लिखने के बाद व्यासदेव ने अत्यन्त अनुताप के साथ कहा था कि 'हे अधिल विश्व के गुरुदेव, आपका कोई रूप नहीं है, फिर भी मैंने ध्यान के द्वारा इन ग्रन्थों में रूप की कल्पना की है, आप अनिर्वचनीय हैं, व्याख्या करके आपके स्वरूप को समझा सकना सम्भव नहीं है, फिर भी मैंने स्तुति के द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की है। वाणी के द्वारा प्रकाश करने का प्रयास किया है। तुम समस्त-भुवन-व्याप्त हो, इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अणु-परमाणु में तुम भिने हुए हो, तथापि तीर्थ-यात्रादि विधान से उस व्यापित्व को खंडित किया है। भला जो सर्वत्र परिव्याप्त है, उसके लिए तीर्थ विशेष में जाने की क्या व्यवस्था? सो हे जगदीश, मेरी बुद्धिगत विकलता के ये तीन अपराध-अरूप की रूपकल्पना,

अनिर्वचनीय का स्तुतिनिर्वचन, व्यापी का स्थान-विशेष में निर्देशकृतुम क्षमा करो।' क्या व्यास जी के महान् आदर्श का पदानुसरण करके इस लेखक को भी यही कहने की जरूरत है?

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितम्,  
स्तुत्या निर्वचनीयताऽखिलगुरोदूरी कृतायन्मया।  
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रदिना,  
क्षन्तव्यं जगदशी, तद् विकलता-दोषत्रयं मत्कृतम्॥

वृद्धावस्था में यश और कीर्ति ने उन्हें बहुत कष्ट दिया। उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ कीं। इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुँचे। वहाँ रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहाँ के संत भगवान गोस्वामी जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उनके मन पर गहरा असर किया-

बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान।  
करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान।

मूर्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए कबीरदास ने कहा है-

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजों पहार।

या ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार।

प्रेम भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु न मानने का ही यह परिणाम हुआ है कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उन्हें घमंडी, अटपटी वाणी का बोलनहारा, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के बारीक भेद को न जानने वाला, अहंकारी, अगुण-सगुण-विवेक-अनभिज्ञ आदि कहकर अपने को उनसे अधिक योग्य मानकर संतोष पाते रहे हैं। यह मानी हुई बात है कि जो बात लोक में अहंकार कहलाती है वह भगवत्प्रेम के क्षेत्र में, स्वाधीनभर्तृका नायिका के गर्व की भाँति अपने और प्रिय के प्रति अखंड विश्वास की परिचायक है, जो बात लोक में दब्बूपन और कायरता कहलाती है, वही भगवत्प्रेम के क्षेत्र में भगवान के प्रति भक्त का अनन्य परायण आम्तार्पण होती है और जो बातें लोक में परस्पर विरुद्ध जँचती हैं भगवान के विषय में उनका विरोध दूर हो जाता है। लोक में ऐसे जीव की कल्पना नहीं की जा सकती जो कर्णहीन होकर भी सब कुछ सुनता हो, चक्षुरहित बना रहकर भी सब कुछ देख सकता हो, वाणीहीन होकर

भी वक्ता हो सकता हो, जो छोटे-से-छोटा भी हो और बड़े-से-बड़ा भी, जो एक भी हो और अनेक भी, जो बाहर भी हो भीतर भी, जिसे सबका मालिक भी कहा जा सके और सबका सेवक भी, जिसे सबके ऊपर भी कहा जा सके और सर्वमय सेवक भी, जिसमें समस्त गुणों का आरोप भी किया जा सके और गुणहीनता का भी, और फिर भी जो न इन्द्रिय का विषय हो, न मन का, न बुद्धि का। परन्तु भगवान के लिए सब विशेषण सब देशों के साधक सर्व-भाव से देते रहे हैं। जो भक्त नहीं हैं, जो अनुभव के द्वारा साक्षात्कार किए हुए सत्य में विश्वास नहीं रखते, वे केवल तर्क में उलझकर रह जाते हैं, पर जो भक्त हैं, वे भुजा उठाकर घोषणा करते हैं, 'अगुणहिं-सगुणहिं नहिं कछु भेदा' (तुलसीदास)। परन्तु तर्क परायण व्यक्ति इस कथन के अटपटेपन को वदतो-व्याघात कहकर संतोष कर लेता है।

यदि भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु मान लिया जाता तो निस्सन्देह स्वीकार कर लिया जाता कि भक्त के लिए वे सारी बातें बेमतलब हैं, जिन्हें कि विद्वान् लोग बारीक भेद कहकर आनन्द पाया करते हैं। भगवान के अनिवर्चनीय स्वरूप को भक्त ने जैसा कुछ देखा है वह वाणी के प्रकाशन क्षेत्र के बाहर हैं, इसीलिए वाणी नाना प्रकार से परस्पर विरोधी और अविरोधी शब्दों के द्वारा उस परम प्रेममय का रूप निर्देश करने की चेष्टा करती है। भक्त उसकी असमर्थता पर नहीं जाता, वह उसकी रूपातीत व्यंजना को ही देखता है। भक्ति तत्त्व की व्याख्या करते-करते उन्हें उन बाह्याचार के जंजालों को साफ करने की जरूरत महसूस हुई है, जो अपनी जड़ प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतन-तत्त्व की उपलब्धि में बाधक है ! यह बात ही समाज सुधार और साम्प्रदाय ऐक्य की विधात्री बन गई है। पर यहाँ भी यह कह रखना ठीक है कि वह भी फोकट का माल या बाईप्रोडक्ट ही है।

### कबीरदास का भक्त रूप

कबीरदास का यह भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप है। इसी केन्द्र के इर्द-गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं। मुश्किल यह है कि इस केन्द्रीय वस्तु का प्रकाश भाषा की पहुँच से बाहर है। भक्ति कहकर नहीं समझाई जा सकती, वह अनुभव करके आस्वादन की जा सकती है। कबीरदासे ने इस बात को हजार तरीके से कहा है। इस भक्ति या भगवान के प्रति अहैतुक अनुराग की बात कहते समय उन्हें ऐसी बहुत सी बातें कहनी पड़ीं हैं, जो भक्ति नहीं

हैं। पर भक्ति के अनुभव करने में सहायक हैं। मूल वस्तु चूँकि वाणी के अगोचर है, इसलिए केवल वाणी का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अगर भ्रम में पड़ जाना पड़ा हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वाणी द्वारा उन्होंने उस निगूढ़ अनुभवैकगम्य तत्त्व की और इशारा किया है, उसे ध्वनित किया गया है। ऐसा करने के लिए उन्हें भाषा के द्वारा रूप खड़ा करना पड़ा है और अरूप को रूप के द्वारा अभिव्यक्त करने की साधना करनी पड़ी है। काव्यशास्त्र के आचार्य इसे ही कवि की सबसे बड़ी शक्ति बताते हैं। रूप के द्वारा अरूप की व्यञ्जना, कथन के जरिए अकथ्य का ध्वनन, काव्य-शक्ति का चरम निर्देशन नहीं तो क्या है? फिर भी ध्वनित वस्तु ही प्रधान है, ध्वनित करने की शैली और सामग्री नहीं।

### कबीर की रचनाएँ

कबीरदास ने हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयांगम कर लिया। संत कबीर ने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। कबीरदास अनपढ़ थे। कबीरदास के समस्त विचारों में राम-नाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे। कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं-

रमैनी

सबद

साखी

इसमें वेदांत तत्त्व, हिन्दू-मुसलमान को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेमसाधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता, हज, नमाज, व्रत, आराधन की गौणता इत्यादि अनेक प्रसंग हैं। सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांत के उपदेश मुख्यतः 'साखी' के भीतर हैं, जो दोनों में हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी और पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।

यह ऐसा संसार है, जैसा सेंबल फूल।  
 दिन दस के व्यौहार को, झूठे रंग न भूला। - कबीर  
 काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट।  
 बलिहारी ता दास की, जे रहै राम की ओट। - कबीर  
 हम देखत जग जात हैं, जब देखत हम जांह।  
 ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह। - कबीर

## बीजक

‘बीजक’ कबीरदास के मतों का पुराना और प्रामाणिक संग्रह है, इसमें संदेह नहीं। एक ध्यान देने योग्य बात इसमें यह है कि ‘बीजक’ में 84 रमैनियाँ हैं। रमैनियाँ चौपाई छंद में लिखी गई हैं। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी हैं। जिनके अंत में एक-एक साखी उद्धृत की गई है। साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानों इन रमैनियों को लिख रहा है और इस रमैनी-रूप व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है। जालंधरनाथ के शिष्य कुण्णपाद (कानपा) ने कहा है— ‘साखि करब जालंधरि पाए’, अस्तु बहुत थोड़ी-सी रमैनियाँ (नं. 3, 28 32, 42, 56, 62, 70, 80) ऐसी हैं जिनके अंत में साखियाँ नहीं हैं। परंतु इस प्रकार उद्धृत करने का क्या अर्थ हो सकता है? इस पुस्तक में मैंने ‘बीजक’ को निस्संकोच प्रमाण-रूप में व्यवहृत है, पर स्वयं ‘बीजक’ ही इस बात का प्रमाण है कि साखियों को सबसे अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए, क्योंकि स्वयं ‘बीजक’ ने ही रमैनियों की प्रामाणिकता के लिए साखियों का हवाला दिया है। इसीलिए कबीरदास ए सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन साखियाँ हैं।

## कबीर रचनावली

कबीरदास की वाणियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं, पर उनमें सबसे अच्छा सुसंपादित संस्करण अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ की ‘कबीर’ रचनावली है। यह भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा का ही प्रकाशन है। कबीरदास के पदों में जितने संबोधन हैं उन सबका एक-न-एक खास प्रयोजन है। जब उन्होंने ‘अवधू’ या ‘अवधूत’ को पुकारा है तो यथासंभव अवधूत की ही भाषा में उसी के क्रिया-कलाप की आलोचना की है। इस प्रसंग में उनकी युक्ति और तर्कशैली पूर्णरूप से अवधूत-जैसी रहती है। जब वे पंडित या पाँडे को संबोधित

करते हैं तो वहाँ भी उनका उद्देश्य पंडित की ही भाषा में पंडित की ही युक्तियों के बल पर उसके मत का निरास करना होता है। इसी तरह मुल्ला, काजी आदि संबोधनों को भी समझना चाहिए। जब वे अपने-आपकों या संतों को संबोधित करके बोलते हैं तब वे अपना मत प्रकट करते जान पड़ते हैं। वे अपने मत के मानने वाले को ही 'संत' या साधु कहते हैं। साधारणतः वे 'भाई' संबोधन के द्वारा साधारण जनता से बात करते हैं और जब कभी वे 'जोगिया' को पुकार उठते हैं तो स्पष्ट जी जान पड़ता है कि इस भले आदमी के संबंध में उनकी धारणा कुछ बहुत अच्छी नहीं थी। यह दावा किया गया है कि गुरु-परेपरा की जानकारी रखने वाले लोग कबीरदास के आत्म-संबोधन में एक निश्चित संकेत की बात बताया करते हैं।

### अवधू और अवधूत

भारतीय साहित्य में यह 'अवधू' शब्द कई संप्रदायों के सिद्ध आचार्यों के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। साधारणतः जागातिक द्वंद्वों से अतीत, मानापमान-विवर्जित, पहुँचे हुए योगी को अवधूत कहा जाता है। यह शब्द मुख्यतया तांत्रिकों, सहजयानियों और योगियों का है। सहजयान और वज्रयान नामक बौद्ध तांत्रिक मतों में 'अवधूती वृत्ति' नामक एक विशेष प्रकार की यौगिक वृत्ति का उल्लेख मिलता है। आठवीं शताब्दी के बाद से नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी आदि विद्यायतनों में जो बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ वह एक नवीन ढंग का तांत्रिक और योगक्रियामूलक धर्म था। इस नवीन तांत्रिक मत में तीन प्रधान मतों का संधान पाया जाता है—सहजयान, वज्रयान और कालचक्रयान। इन मतों की अधिकांश पुस्तकें आज तिब्बती अनुवाद के रूप में ही सुरक्षित हैं। स्व. हरप्रसाद शास्त्री ने 'चर्याचयीविनिश्चय', 'दोहाकोष', 'अद्वयवज्रसंग्रह' और 'गुह्य-समाजतंत्र' आदि पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सहजयान और वज्रयान में बहुत कुछ समानता है। शास्त्री जी ने जो चर्यापद प्रकाशित कराए हैं उनमें आर्यदेव, भूसुक, कान्ह, सरह, लुई आदि आचार्यों के पद हैं, जिन्हें तिब्बती साहित्य में सिद्धाचार्य कहा गया है। ये आचार्यगण सहजवस्था की बात करते हैं। सहजावस्था को प्राप्त करने पर ही साधक अवधूत होता है।

तंत्र-ग्रंथों में चार प्रकार के अवधूतों की चर्चा है— ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, भक्तावधूत और हंसावधूत। हंसावधूतों में जो पूर्ण होते हैं वे परमहंस और जो अपूर्ण होते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं ('प्राणतोषिणी')। परंतु कबीरदास ने न

तो इतने तरह के अवधूतों की कहीं कोई चर्चा ही की है और न ऊपर 'निर्वाण-तंत्र' के बताए हुए अवधूत से उनके अवधूत की कोई समता ही दिखाई है। 'हंसा' की बात कबीरदास कहते जरूर हैं पर वे हंस और अवधूत को शायद ही कहीं एक समझते हों। वे बराबर हंस या पक्षी शुद्ध और मुक्त जीवात्मा को ही कहते हैं। इसी भाव को बताने के लिए भर्तृहरि ने कहा है कि इस अवधूत मुनि की बाह्य क्रियाएँ प्रशमित हो गई हैं। वह न दुःख समझता है, न सुख को सुख। वह कहीं भूमि पर सो सकता है कहीं पलंग पर, कहीं कंथा धारण कर लेता है कहीं दिव्य वसन, कहीं मधुर भोजन पाने पर उसे भी पा लेता है। 'किंतु कबीरदास इस प्रकार योग में भोग को पंसद नहीं करते। यद्यपि इन योगियों के संप्रदाय के सिद्धों को ही कबीरदास अवधूत कहते हैं तथापि वे साधारण योगी अवधूत के फर्क को बराबर याद रखते हैं। साधारण योगी के प्रति उनके मन में वैसा आदर का भाव नहीं है जैसा अवधूत के बारे में है। कभी-कभी उन्होंने स्पष्ट भाषा में योगी को और अवधूत को भिन्न रूप से याद किया है। इस प्रकार कबीरदास का अवधूत नाथपंथी सिद्ध योगी है।

प्रसिद्ध है कि एक बार काशी के पंडितों में द्वैत और अद्वैत तत्त्व का शास्त्रार्थ बहुत दिनों तक चलता रहा। जब किसी शिष्य ने कबीर साहब का मत पूछा तो उन्होंने जवाब में शिष्य से ही कई प्रश्न किए। शिष्य ने जो उत्तर दिया उसका सार-मर्म यह था कि विद्यमान पंडितों में इस विषय में कोई मतभेद नहीं है कि भगवान, रूप, रस, गंध एवं स्पर्श से परे हैं, गुणों और क्रियाओं के अतीत हैं, वाक्य और मन के अगोचर हैं। कबीरदास ने हसँकर जवाब दिया कि भला उन लड़ने वाले पंडितों से पूछो कि भगवान रूप से निकल गया, रस से निकल गया, रस से अतीत हो गया, गुणों के ऊपर उठ गया, क्रियाओं की पहुँच के बाहर हो रहा, वह अंत में आकर संख्या में अटक जाएगा? जो सबसे परे है वह क्या संख्या के परे नहीं हो सकता? यह कबीर का द्वैताद्वैत-विलक्षण समतत्त्ववाद है।

### निरंजन कौन है?

मध्ययुग के योग, मंत्र और भक्ति के साहित्य में 'निरंजन' शब्द का बारम्बार उल्लेख मिलता है। नाथपंथ में भी 'निरंजन' शब्द खूब परिचित है। साधारण रूप में 'निरंजन' शब्द निर्गुण ब्रह्म का और विशेष रूप से शिव का वाचक है। नाथपंथ की भाँति एक और प्राचीन पंथ भी था, जो निरंजन पद को परमपद मानता था। जिस प्रकार नाथपंथी नाथ को परमाराध्य मानते थे, उसी

प्रकार ये लोग 'निरंजन' को। आजकल निरंजनी साधुओं का एक सम्प्रदाय राजपूताने में वर्तमान है। कहते हैं, इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी निरानंद निरंजन भगवान (निर्गुण) के उपासक थे।

बंगाल के पश्चिमी हिस्सों तथा बिहार के पूर्वी जिलों में आज भी एक धर्ममत है, जिसके देवता निरंजन या धर्मराज हैं। एक समय यह सम्प्रदाय झारखण्ड और रीवाँ तक प्रचलित था। बाद में चलकर यह मत कबीर सम्प्रदाय में अंतर्भुक्त हो गया और उसकी सारी पौराणिक कथाएँ कबीर मत में गृहीत हो गईं, परन्तु उनका स्वर बदल गया। नाथपंथ में निरंजन की महिमा खूब गाई गई है। हठयोगी जब नादानुसंधान का सफल अभ्यासी हो जाता है तो उसके समस्त पाप क्षीण हो जाते हैं, उसके चित्त और मारुत निरंजन में लीन हो जाते हैं। यह योगी का परम साध्य है, क्योंकि जब तक ज्ञान निरंजन के साक्षात्कार तक नहीं उठता तभी तक इस संसार के विविध जीवों और नाना पदार्थों में भेद-दृष्टि बनी हुई है।

### कबीर के दोहे

यहाँ कबीरदास के कुछ दोहे दिये गये हैं।

(1) साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।

धन का भूखा जी फिरै, सो तो साधू नाहिं॥

व्याख्या— कबीर दास जी कहते हैं कि संतजन तो भाव के भूखे होते हैं, और धन का लोभ उनको नहीं होता। जो धन का भूखा बनकर घूमता है वह तो साधू हो ही नहीं सकता।

(2) जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय।

जैसा पानी पीजिये, तैसी वाणी होय॥

व्याख्या— संत शिरोमणि कबीरदास कहते हैं कि जैसा भोजन करोगे, वैसा ही मन का निर्माण होगा और जैसा जल पियोगे वैसी ही वाणी होगी अर्थात् शुद्ध-सात्विक आहार तथा पवित्र जल से मन और वाणी पवित्र होते हैं, इसी प्रकार जो जैसी संगति करता है वैसा ही बन जाता है।

कबीरदास जी के कुछ प्रसिद्ध दोहे

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागूँ पाय।

बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय॥

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोये।



औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होए॥  
 लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।  
 पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट॥  
 बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर।  
 पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर॥  
 बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।  
 जो मन देखा आपना, मुझ से बुरा न कोय॥  
 तिनका कबहुँ ना निंदये, जो पाँव तले होय।  
 कबहुँ उड़ आँखो पड़े, पीर घानेरी होय॥  
 दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।  
 जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय॥  
 माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रोंदे मोहे।  
 एक दिन ऐसा आएगा, मैं रोदुंगी तोहे॥  
 मांगन मरण सामान है, मत मांगो कोई भीख, ।  
 मांगन से मरना भला, ये सतगुरु की सीख॥  
 चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोये।  
 दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोए॥  
 काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।  
 पल में परलय होएगी, बहुरि करेगा कब॥  
 माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर।  
 आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर॥  
 जहाँ दया तहा धर्म है, जहाँ लोभ वहां पाप।  
 जहाँ क्रोध तहा काल है, जहाँ क्षमा वहां आप॥  
 जो घट प्रेम न संचारे, जो घट जान सामान।  
 जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिनु प्राण॥  
 कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हँसे हम रोये।  
 ऐसी करनी कर चलो, हम हँसे जग रोये॥  
 कबीर सुता क्या करे, जागी न जपे मुरारी।  
 एक दिन तू भी सोवेगा, लम्बे पाँव पसारी॥  
 कबीर खड़ा बाजार में, सबकी मांगे खैर।  
 ना काहूँ से दोस्ती, ना काहूँ से बैर॥

उठा बगुला प्रेम का, तिनका चढ़ा अकास।  
 तिनका तिनके से मिला, तिन का तिन के पास।।  
 पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।  
 ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।  
 राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।  
 जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय।।  
 साधू गाँठ न बाँधई उदर समाता लेय।  
 आगे पाछे हरी खड़े जब माँगे तब देय।।  
 साईं इतना दीजिये, जामे कुटुंब समाये।  
 मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाए।।  
 सुमिरन सूरत लगाई के, मुख से कछु न बोल।  
 बाहर का पट बंद कर, अन्दर का पट खोल।।  
 कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।  
 भक्ति करे कोई सुरमा, जाती बरन कुल खोए।।

### कबीर की साखी-1

सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी सई न दाति।  
 हरिजी सवाँ न को हितू, हरिजन सई न जाति।।1।।

सद्गुरु के समान कोई सगा नहीं है। शुद्धि के समान कोई दान नहीं है।  
 इस शुद्धि के समान दूसरा कोई दान नहीं हो सकता। हरि के समान कोई हितकारी  
 नहीं है, हरि सेवक के समान कोई जाति नहीं है।

बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार।  
 मानुष तैं देवता किया, करत न लागी बार।।2।।

मैं अपने गुरु पर प्रत्येक क्षण सैकड़ों बार न्यौछावर जाता हूँ जिसने मुझको  
 बिना विलम्ब के मनुष्य से देवता कर दिया।

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।  
 लोचन अनँत उधारिया, अनँत दिखावनहार।।3।।

सद्गुरु की महिमा अनन्त है। उसका उपकार भी अनन्त है। उसने मेरी अनन्त दृष्टि खोल दी जिससे मुझे उस अनन्त प्रभु का दर्शन प्राप्त हो गया।

राम नाम कै पटंतरे, देबे कौं कुछ नाहिं।  
क्या लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि॥4॥

गुरु ने मुझे राम नाम का ऐसा दान दिया है कि मैं उसकी तुलना में कोई भी दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ।

सतगुरु कै सदकै करूँ, दिल अपनी का साँच।  
कलिजुग हम सौं लड़ि पड़ा, मुहकम मेरा बाँच॥5॥

सद्गुरु के प्रति सच्चा समर्पण करने के बाद कलियुग के विकार मुझे विचलित न कर सके और मैंने कलियुग पर विजय प्राप्त कर ली।

सतगुरु शब्द कमान ले, बाहन लागे तीर।  
एक जु बाहा प्रीति सों, भीतर बिंधा शरीर॥6॥

मेरे शरीर के अन्दर (अन्तरात्मा में) सद्गुरु के प्रेमपूर्ण वचन बाण की भाँति प्रवेश कर चुके हैं जिससे मुझे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो गया है।

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।  
लागत ही भैं मिलि गया, पड्या कलेजै छेक॥7॥

सद्गुरु सच्चे वीर हैं। उन्होंने अपने शब्दबाण द्वारा मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव डाला है।

पीछें लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।  
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥8॥

मैं अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकता हुआ लोक और वेदों में सत्य खोज रहा था। मुझे भटकते देखकर मेरे सद्गुरु ने मेरे हाथ में ज्ञानरूपी दीपक दे दिया जिससे मैं सहज ही सत्य को देखने में समर्थ हो गया।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।  
पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आँवौं हट्ट॥१॥

कबीर दास जी कहते हैं कि अब मुझे पुनः इस जन्म-मरणरूपी संसार के बाजार में आने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मुझे सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

ग्यान प्रकासा गुरु मिला, सां जिनि बीसरिं जाइ।  
जब गोविंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आई॥१०॥

गुरु द्वारा प्रदत्त सच्चे ज्ञान को मैं भुल न जाऊँ ऐसा प्रयास मुझे करना है क्योंकि ईश्वर की कृपा से ही सच्चे गुरु मिलते हैं।

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटै लौन।  
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौन॥११॥

कबीर कहते हैं कि मैं और मेरे गुरु आटे और नमक की तरह मिलकर एक हो गये हैं। अब मेरे लिये जाति-पाति और नाम का कोई महत्त्व नहीं रह गया है।

जाका गुरु भी अँधला, चेला खरा निरंध।  
अंधहि अंधा ठेलिया, दोनों कूप पडंत॥१२॥

अज्ञानी गुरु का शिष्य भी अज्ञानी ही होगा। ऐसी स्थिति में दोनों ही नष्ट होंगे।

नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्याडाव।  
दोनौं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव॥१३॥

साधना की सफलता के लिए ज्ञानी गुरु तथा निष्ठावान साधक का संयोग आवश्यक है। ऐसा संयोग न होने पर दोनों की ही दुर्गति होती है। जैसे कोई पत्थर की नाव पर चढ़ कर नदी पार करना चाहे।

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माँहि।  
तिहि घर किसकौ चाँदना, जिहि घर गोविंद नाँहि॥14॥

ईश्वर भक्ति के बिना केवल कलाओं और विद्याओं की निपुणता मात्र से मनुष्य का कल्याण सम्भव नहीं है।

भली भई जु गुर मिल्या, नातर होती हानि।  
दीपक जोति पतंग ज्युँ, पड़ता आप निदान॥15॥

कबीर दास जी कहते हैं कि सौभाग्यवश मुझे गुरु मिल गया अन्यथा मेरा जीवन व्यर्थ ही जाता तथा मैं सांसारिक आकर्षणों में पड़कर नष्ट हो जाता।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पडंत।  
कहै कबीर गुर ग्यान तैं, एक आध उबरंत॥16॥

माया का आकर्षण इतना प्रबल है कि कोई विरला ही गुरु कृपा से इससे बच पाता है।

संसै खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खड्ड।  
जे बेधे गुरु अष्पिरां, तिनि संसा चुनिचुनि खड्ड॥17॥

अधिकांश मनुष्य संशय से ग्रस्त रहते हैं। किन्तु गुरु उपदेश से संशय का नाश संभव है।

सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोला।  
पासि विनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल॥18॥

सद्गुरु मिलने पर भी यह आवश्यक है कि साधना द्वारा मन को निम्नल किया जाय अन्यथा गुरु मिलन का संयोग भी व्यर्थ चला जाता है।

बूड़ा था पै ऊबरा, गुरु की लहरि चर्मकि।  
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि॥19॥

कबीर दास जी कहते हैं कि कर्मकाण्ड रूपी नाव से भवसागर पार करना कठिन था। अतः मैंने कर्मकाण्ड छोड़कर गुरु द्वारा बताये गये मार्ग से आसानी से सिद्धि प्राप्त कर ली।

गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।  
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार॥20॥

गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। जो साधक अहंता का भाव त्याग देता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीख।  
स्वाँग जती का पहिरि करि, घरि घरि माँगे भीख॥21॥

सद्गुरु के मार्गदर्शन के अभाव में साधना अधूरी रह जाती है और ऐसे लोग संन्यासी का वेश बनाकर केवल भिक्षा मांगते रहते हैं।

सतगुर साँचा, सूरिवाँ, तातैं लोहि लुहार।  
कसनी दे कंचन किया, ताई लिया ततसार॥22॥

इस साखी में कबीर दास जी ने सद्गुरु के लिए सोनार और लोहार का दृष्टान्त दिया है। सोनार की भाँति गुरु शिष्य को साधना की कसौटी पर परखता है फिर लोहार की भाँति तपाकर शिष्य के मन को सही आकार देता है।

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीरा।  
निपजी मैं साझी घना, बाँटे नहीं कबीर॥23॥

कबीर दास जी कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से आत्मज्ञान का आनन्द मुझे मिला है, किन्तु चाह कर भी मैं इस आनन्द को दूसरों के साथ बाँट नहीं सकता क्योंकि आत्मानुभूति के लिए व्यक्ति को स्वयं साधना करनी पड़ती है।

सतगुरु हम सँ रीझि करि, कहा एक परसंग।  
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग॥24॥

सद्गुरु ने प्रसन्न होकर हमसे एक रहस्य की बात बतलायी, जिससे प्रेम का बादल इस प्रकार बरसा कि हम उसमें भीग गये।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ।  
अंतरि भीगी आतमाँ, हरी भई बनराई॥25॥

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु के बताये हुए मार्ग से प्रेम का बादल उमड़कर हमारे ऊपर बरसने लगा। हमारी अन्तरात्मा भीग गयी और जीवनरूपी वनराशि हरी हो गयी।

:: सुमिरन ::

कबीर कहता जात है, सुनता है सब कोइ।  
राम कहें भल होइगा, नहीं तर भला न होइ॥26॥

कबीरदास कहते हैं कि मैं कहता जाता हूँ अर्थात् बराबर कहता रहा हूँ और सभी मेरी बात सुनते भी हैं, किन्तु मेरे उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता। मेरा कहना यही है कि प्रभु के स्मरण से ही कल्याण होगा और किसी प्रकार से कल्याण नहीं हो सकता।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये ब्रह्म महेश।  
राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस॥27॥

कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम-नाम ही वास्तव में सार वस्तु है।

तत्त तिलक तिहुँ लोक मैं, रामनाम निज सार।  
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार॥28॥

तीनों लोकों में श्रेष्ठ तत्त्व रामनाम है और वही अपना भी सार है। भक्त कबीर ने अपने मस्तक पर उसको धारण कर लिया और इससे उनके जीवन में अपार शोभा आ गयी।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।  
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार॥29॥

प्रभु की भक्ति और उनके नाम का भजन (जप) यही वस्तुतः सार है और सब बातें अपार दुःख हैं। कबीर का यह कहना है कि मन, वचन और कर्म से प्रभु का स्मरण ही जीवन का सार है।

चिंता तौ हरि नाँव की, और न चितवै दास।  
जे कछु चितवैं राम बिन, सोइ काल की पास॥30॥

दास कबीर कहते हैं कि मैं तो केवल हरि नाम का चिन्तन करता हूँ और किसी वस्तु का चिन्तन नहीं करता। जो लोग राम को छोड़कर और कुछ चिन्तन करते हैं, वे बन्धन और मृत्यु में फँसते हैं।

मेरा मन सुमिरै राम को, मेरा मन रामहि आहि।  
अब मन रामहिं हवै रहा, सीस नवावौं काहि॥31॥

मेरा मन राम का स्मरण करते-करते राममय हो गया। ऐसी स्थिति में अब मैं किसको नमस्कार करूँ?

तूँ तूँ करता तू भया, मुझ मैं रही न हूँ।  
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ॥32॥

मुझमें अहंभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्ण रूप से तेरे ऊपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत् ब्रह्ममय हो गया है।



कबीर निरभै राम जपु, जब लागि दीवै बाति।  
तेल धटै बाती बुझै, (तब) सोवैगा दिन राति॥33॥

कबीर कहते हैं कि जब एक शरीर रूपी दीपक में प्राण रूपी वर्तिका विद्यमान है अर्थात् जब तक जीवन है, तब तक निर्भय होकर राम नाम का स्मरण करो। जब तेल घटने पर बत्ती बुझ जायेगी अर्थात् शक्ति क्षीण होने पर जब जीवन समाप्त हो जायेगा तब तो तू दिन-रात सोयेगा ही अर्थात् मृत हो जाने पर जब तेरा शरीर निश्चेतन हो जायेगा, तब तू क्या स्मरण करेगा ?

कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि।  
इक दिन सोवन होइगा, लम्बे पाँव पसारि॥34॥

कबीर जीव को चेतावनी देते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोते हुए क्या कर रहा है? जग कर अर्थात् इस निद्रा को त्याग कर भगवान का स्मरण कर। एक दिन तो तुझे पैर फँलाकर चिर निन्द्रा में मग्न होना ही है।

कबीर सूता क्या करै, गुन गोविंद के गाई।  
तेरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाई॥35॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोया हुआ क्या कर रहा है? तू प्रभु का गुणगान क्यों नहीं करता है? तेरे सिर पर यमराज खड़ा है। तू भी काल-ग्रस्त हो जाएगा, बचेगा नहीं। इसलिए जीवन रहते हुए सचेत होकर भगवान का स्मरण कर।

केसौ कहि कहि कूकिए, नाँ सोइय असरार।  
राति दिवस कै कूकनै, कबहुँक लगे पुकार॥36॥

प्रभु को निरन्तर आर्त स्वर से पुकारते रहो। घोर निद्रा में न पड़े रहो। दिन-रात की पुकार से, सम्भव है, कभी सुनवाई हो जाय और तुम्हारी पुकार लग जाये।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम।  
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम॥37॥

जिनके हृदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वे मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होकर नष्ट होते हैं।

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।  
सूने घर का पाहुनाँ ज्यूँ आया त्यूँ जाव॥38॥

कबीर कहते हैं कि जिसने प्रभु के प्रेम का अनुभव नहीं किया उसका इस संसार में जन्म लेना और मर जाना सूने घर में अतिथि के आने-जाने के समान है।

पहिलै बुरा कमाई करि, बाँधी विष की पोटा।  
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की ओटा॥39॥

पहले अर्थात् पूर्व जन्म में अनेक पाप-कर्म करके जीव ने जो विष की गठरी बाँध रखी है, प्रभु की शरण में जाने पर वह उसको क्षण भर में फेंक कर शुद्ध हो जाता है।

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।  
अनेक जुग जो पुनि करै, नहीं राम बिन ठाउँ॥40॥

यदि प्रभु का तनिक भी नाम-स्मरण किया जाये तो वह पूर्व जन्म के करोड़ों दुष्कर्मों को क्षण भर में ढकेल कर नष्ट कर सकता है। किन्तु-भक्ति के बिना मनुष्य चाहे अनेक युगों तक पुण्य करे, उसको कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिल सकता है।

जिहि हरि जैसा जानियां, तिनकौ तैसा लाभा।  
ओसों प्यास न भाजई, जब लागि धसै न आभा॥41॥

प्रभु को जिसने जिस प्रकार पहचाना है, उसी प्रकार उसको लाभ प्राप्त होता है। जब तक प्यासा पानी में डुबकी नहीं लगाता, तब तक केवल ओस चाटने से प्यास नहीं जाती।

राम पियारा छाँडि करि, करै आन का जाप।  
वेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन सौं बाप॥42॥

जो परम मित्र परमात्मा राम को छोड़कर अन्य देव-देवी का जप करता है, वह वेश्या के पुत्र के समान है, जो अपने वास्तविक पिता को नहीं जानता।  
उस्तुतः परमात्मा ही सबका पिता है, अन्य कोई नहीं।

कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाइ।  
जिहि मुखि राम न ऊचरै, तिहि मुख फेरि कहाइ॥43॥

कबीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं राम का जप करना ही चाहिए, उसे औरों से भी 'राम' कहलवाना चाहिए। जो व्यक्ति राम नाम का उच्चारण नहीं करता है, उससे बार-बार कहलाना चाहिये।

जैसे माया मन रमैं, यों जे राम रमाइ।  
(तौ) तारा मंडल बेधि कै, जहाँ के सो तहँ जाइ॥44॥

जिस प्रकार जीव का मन माया में रमण करता है, उसी प्रकार यदि उसका मन राम में रमण करे तो वह ब्रह्म में लीन हो सकता है।

लूटि सकै तौ लूटि लै, राम नाम की लूटि।  
फिर पाछे पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि॥45॥

मानव शरीर ही एक ऐसी योनि है जिसमें साधना सम्भव है। जब यह शरीर छूट जाएगा तो यह आध्यात्मिक साधना संभव न हो सकेगी और तब पछताओगे कि एक ईश्वर प्रदत्त अवसर को गँवा दिया।

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भंडार।  
काल कंठ तैं गहेगा, रूँधै दसों दुवार।।46।।

राम नाम का अक्षय भण्डार यथाशक्ति लूट लो। जब काल तुम्हारे कंठ को दबोचेगा, तब शरीर के दसों द्वार अवरुद्ध हो जायेंगे। उस समय तुम चेतना-शून्य को जाओगे और राम नाम का स्मरण कैसे कर सकोगे ?

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।  
कहौ संतौ क्योँ पाइए, दुर्लभ हरि दीदार।।47।।

पथिक का घर बहुत दूर है और मार्ग कवेल लम्बा ही नहीं, दुस्तर भी है। मार्ग में बहुत से बटमार भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ है। इसी प्रकार प्रभु की प्राप्ति अपना लक्ष्य है। इसलिए चेत जाओ और गुरु की सहायता से मार्ग से विनों से बचते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

गुन गाए, गुन ना कटै, रटै न, राम बियोग।  
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्योँ पावै दुर्लभ जोग।।48।।

प्रभु का केवल गुणगान करने से कि वह सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और कीर्तन-भजन करने से प्रकृति का त्रिगुणात्मक बन्धन नहीं कट सकता। यदि भक्त हृदय से उसका स्मरण न करता रहे तो प्रभु से वियोग बना रहता है।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरताँ हरि नाम।  
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरै त नाहीं ठाम।।49।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु के भक्ति-मार्ग में बड़ी कठिनाई है। यह कठिनाई उसी प्रकार की है जैसे सूली के ऊपर नट द्वारा दिखलायी जाने वाली कला, जिसमें हमेशा यह भयावह स्थिति बनी रहती है कि यदि वह गिरा तो उसके बचने का कोई सहारा नहीं है।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।  
हरि सागर जिनि बीस्रै, छीलर देखि अनंत॥50॥

कबीर कहते हैं कि जिह्वा से तो राम का मन्त्र जपते रहो और मन से उनका ध्यान करते रहो। मन्त्र जपना प्राण की क्रिया है, ध्यान मन की क्रिया। अतः प्रभु तो सागर के समान हैं इसलिये छिछले तालाब रूपी देव-देवियों के चक्कर में पड़कर महासागर के समान प्रभु को मत भुला दो।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।  
फूटा नग ज्यों जोड़ि मन, संधिहि संधि मिलाइ॥51॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू उस अमर तत्त्व का गुणगान कर, जो अमृत के समान औरों को भी अमर कर देता है। अपने चित्त को प्रभु में उसी प्रकार मिला दे, जैसे जौहरी फूटे हुए नग को संधि से संधि कर अर्थात् आपस में मिलाकर जोड़ देता है।

कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिस लागी लाइ।  
हरि सुमिरन हाथौं घड़ा बेगे लेहु बुझाइ॥52॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में सर्वत्र विषय वासना रूपी आग लगी हुई है। उसके ताप से तेरा चित्त तप्त हो उठा है। परन्तु हे भक्त! तू घबड़ा मत। प्रभु के स्मरण-रूपी पावन जल से भरा हुआ घट तेरे हाथ में है अर्थात् तू प्रभु का स्मरण करने की स्थिति में है। उस घड़े से तू विषय-वासना रूपी आग को शीघ्र ही अधीन कर ले अर्थात् बुझा ले।

:: ग्यान बिरह ::

दीपक पावक आँनिया, तेल भि आना संग।  
तीन्यँ मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग॥53॥

ज्योति के लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता होती है-दीपक, आग और तेल। इसी प्रकार जीव में ज्ञान रूपी ज्योति तभी आ सकती है, जब गुरु जीव रूपी दीपक में ज्ञान रूपी अग्नि और प्रेम अथवा भक्ति रूपी तेल एकत्र कर तीनों को योजित कर दे। ऐसा होने पर फिर तो विषय-वासना रूपी पतिंगे स्वतः आ-आकर जल मरते हैं।

मारा है जे मरैगा, बिन सर थोथी भालि।  
पड़ा पुकारै ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि॥54॥

यदि गुरु ने केवल ज्ञान-विहीन बिरह का बाण मारा है, तब भी शिष्य मरेगा अर्थात् अपना या अहंभाव खोयेगा अवश्य। ठीक इसी प्रकार जिसमें केवल रागात्मक बिरह है, वह भी अहंभाव खोएगा, किन्तु बहुत समय के बाद। जिसको ज्ञान संयुक्त बिरह का बाण लगा है, वह शीघ्र ही अहंभाव खो देगा।

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।  
जोगी था सो रमि गया, आसनि रही विभूति॥55॥

ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित हुई, उसमें योगी के सारे संचित कर्मों की झोली जल गयी और क्रियमाण कर्म रूपी भिक्षापात्र भी टूट-फुट गया अर्थात् अब उसका भी योगी पर कोई प्रभाव न रहा। उसके भीतर जो तत्त्व साधना कर रहा था, वह ब्रह्म में विलुप्त हो गया। अब आसन पर केवल भस्म रह गया अर्थात् साधक अपने पूर्व रूप में न रह कन अवशेष मात्र प्रतीक रूप में कहने-सुनने को रह गया।

आगि जु लागी नीर महिं, कांदौ जरिया झारि।  
उतर दखिन के पंडिता, मुए बिचारि बिचारि॥56॥

पानी में आग लग गयी और उसका कीचड़ सम्पूर्णतया जल गया अर्थात् अवचेतन में जो दूषित संस्कार और वासनाएँ हैं वे भस्म हो गईं। उत्तर-दक्षिण के पंडित (पोथी तक सीमित ज्ञान वाले पंडित) अर्थात् चारों ओर के शास्त्री विचार कर हार गये पर इसका मर्म किसी की समझ में न आया।

दौं लागी सायर जला पंखी बैठे आई।  
दाधी देह न पालवै, सद्गुरु गया लगाइ॥57॥

ज्ञान-विरह की अग्नि से मानस-सरोवर जल गया। अब हंस रूपी शुद्ध जीव ऊपर स्थित हो गया अर्थात् वासनाओं और पृथक् वैयक्तिक सत्ता से विमुक्त हो गया। पृथक् वैयक्तिक सत्ता रूपी देह भस्म हो गयी। अब वह पुनः नहीं पनप

सकती अर्थात् स्वयं का अहंभाव सदा के लिए जाता रहा। अब वह पुनः पल्लवित न हो सकेगा।

गुरु दाधा चेला जला, बिहरा लागी आगि।  
तिनका बपुरा ऊबरा, गलि पूरे के लागि॥58॥

गुरु ने बिरह की आग लगायी। उस आग में चेला जल गया अर्थात् उसके भीतर पूर्ण रूप से विरह की आग व्याप्त हो गई। सामान्यतया आग लगने से तिनका जलकर राख हो जाता है। परन्तु विरह की आग ऐसी होती है जिससे बेचारे क्षुद्र चेले रूपी तिनके का उद्धार ही हो जाता है, क्योंकि उस बिरह से तृण का भस्म से और चेले का पूर्ण से आलिंगन हो जाता है।

अहेड़ी दौ लाइया मिरग पुकारे रोइ।  
जा बन में क्रीला करी, दाइत है बन सोइ॥59॥

गुरु रूपी शिकारी शिष्य के मनरूपी देहात्मक वन में ज्ञान-विरह की आग लगता है और वह वासनासक्त जीव रूपी मृग चिल्ला-चिल्लाकर रोता है कि जिस विषय-वासना रूपी वन में भोग कर रहे थे, वह अब जल रहा है, नष्ट हुआ जा रहा है। अर्थात् मृग और आसक्ति-मुक्त जीवन में केवल भेद यह है कि मृग को वन का मोह बना रहता है, परन्तु आसक्ति-मुक्त जीव को क्षण भर के लिए धक्का-सा तो लगता है, परन्तु बाद में उसे मधुर शांति का अनुभव होता है।

पांनीं मांहीं परजली, भई अपरबल आगि।  
बहती सरिता रहि गई, मच्छ रहे जल त्यागि॥60॥

जब गुरु ने ज्ञान-विरह की अग्नि प्रज्वलित की तो प्रबल ज्वाला उठी और विषयासक्त जीव प्रज्वलित हो गया। इन्द्रियों का कार्य समाप्त हो गया और जीवात्मा रूपी मत्स्य ने विषय-वासनामयी जल को त्याग दिया।

:: परचा (परिचय) ::  
कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सेनि।  
पति संगि जागी सुन्दरी, कौतुक वीठा तेनि॥61॥

कबीर कहते हैं कि परमात्मा की ज्योति इतनी शक्तिशाली है मानों सूर्य की श्रेणी उदय हुई हो। परन्तु इस ज्योति रूपी ज्ञान का अनुभव सबको नहीं होता। जो व्यक्ति मोह-निद्रा में सोता नहीं रहता, परमात्मा के साथ जागता रहता है, उन्हीं के द्वारा यह रहस्य देखा जाता है।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।  
कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही परमान॥62॥

परब्रह्म के प्रकाश का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुमान, प्रत्यक्ष, उपमान आदि साधन तो मायिक जगत् के हैं। उसका साक्षात्कार इन किसी भी साधनों के क्षेत्र में नहीं है। उसका सौन्दर्य व्याख्यान से परे है। उसका प्रमाण केवल अपरोक्षानुभूति ही है।

हदे छाँड़ि बेहदि गया, हुआ निरन्तर वास।  
कवल जु फूला फूल बिना, को निरखै निज दास॥63॥

कबीर कहते हैं कि मैं ससीम से परे अर्थात् पारकर असीम में पहुँच गया और वहाँ मेरी शाश्वत स्थिति हो गई। वहाँ मैंने अनुभव किया कि बिना किसी फूल के एक कमल खिला हुआ जिसे प्रभु-भक्त के सिवाय भला और कौन देख सकता है ?

अन्तरि कवल प्रकासिका, ब्रह्म वास तहँ होइ।  
मन भँवरा तहँ लुबधिया, जानैगा जन कोइ॥64॥

हृदय के अर्न्तमन में कमल अर्थात् ज्योति प्रकाशित हो रहा है। वहाँ ब्रह्म का निवास है। मन रूपी भौरा उस कमल रूपी ज्योति पर लुब्ध होकर उसमें विचरण करता रहता है। इस रहस्य को केवल प्रभु का भक्त ही जान सकता है।

सायर नाहीं सीप नहिं, स्वाति बूँद भी नाँहि।  
कबीर मोती नीपजै, सुनि सिखर गढ़ माँहि॥65॥



कबीर कहते हैं कि वहाँ न तो सागर है न सीप है और न ही स्वाति-बूँद अर्थात् मोती में उत्पन्न होने के जितने संभावित कारण हैं, उनमें से एक भी विद्यमान नहीं है, फिर भी इस शरीर के भीतर सहस्रार में मोती उत्पन्न हो रहा है अर्थात् एक अद्भुत ज्योति का साक्षात्कार हो रहा है।

घट माँहैं औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।  
कहि कबीर परचा भया, गुरु दिखाई बाट॥66॥

कबीर कहते हैं कि गुरु ने मार्ग दर्शन किया। परिणामस्वरूप इस शरीर में ही मैंने एक विकट मार्ग का अनुभव किया और उस विकट मार्ग से ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। वहाँ मुझे सत्य का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार हुआ।

सूर समाना चाँद मैं, दुहूँ किया घर एक।  
मन का चेता तब भया, कछू पूरबला लेख॥67॥

जब सूर्य नाड़ी चन्द्र नाड़ी में समाहित हो जाती है अर्थात् सुषुम्ना में चलने लगती है, तब मन का स्वेच्छित फल मिल जाता है। यह पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही परिणाम है।

हद्द छाड़ि बेहद गया, किया सुनि असनान।  
मुनि जन महल न पावहीं, तहाँ किया बिसराम॥68॥

कबीर ने सीमित से आगे बढ़कर असीम को प्राप्त कर लिया है। अब वह शून्य के आनन्द-सागर में अवगाहन कर रहे हैं। जो स्थान बड़े-बड़े मुनियों के लिए भी दुर्लभ है, वहाँ पहुँचकर कबीर पूर्ण विश्राम कर रहे हैं।

देखौ करम कबीर का, कछू पूरब जनम का लेख।  
जाका महल न मुनि लहैं सो दोसत किया अलेख॥69॥

कबीर कहते हैं कि यह मेरे किसी पूर्व जन्म के पुण्य का फल है कि जिस स्थान को बड़े-बड़े मुनि नहीं प्राप्त कर सकते हैं, वह मुश्किल लक्ष्य, निराकार सत्ता कबीर के लिए प्रिय के समान प्राप्त है।

मन लागा उनमन्न सौ, गगन पहुँचा जाइ।  
चाँद बिहूँना चादिना, अलख निरंजन राइ॥70॥

मेरा मन एक संकल्प-विकल्पात्मक अवस्था के ऊपर राम के मन में मिल गया। वहाँ मैंने एक विचित्र प्रकाश का अनुभव किया, जो कि बिना चन्द्रमा के ही चाँदनी जैसा शीतल और स्निग्ध था। मैंने वहीं उस त्रिगुणातीत, निर्गुण, निराकार सत्ता का दर्शन किया है, जो कि स्थूल इन्द्रियों की पहुँच से परे है।

मन लागा उनमन्न सो, उनमन मनहि विलग।  
लौन विलंगा पानियाँ, पानीं लौन विलग॥71॥

कबीर कहते हैं कि मेरे संकल्प-विकल्पात्मक मन ने अपना स्वभाव छोड़ दिया और राम के मन में उसी प्रकार से सानिध्य हो गया जैसे नमक और जल मिलकर एक हो जाते हैं।

पानी ही तै हिम भया, हिम हवै गया बिलाइ।  
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहा न जाइ॥72॥

मानव के भीतर जो साक्षि-चौतन्य है, जो चिन्मात्र है, वह पानी के समान है। वही चिन्मात्र अन्तःकरण से परिसीमित होकर चिदाभास का रूप ग्रहण करता है। यह चिदाभास हिम अर्थात् बर्फ के समान है, क्योंकि जल की अपेक्षा में यह स्थूल है। जैसे बर्फ गलकर फिर पानी की अवस्था में आ जाती है, वैसे ही अन्तःकरण में जो चिदाभास है, वह फिर लीन होने पर चिन्मात्र हो जाता है अर्थात् जीव ब्रह्म के रूप में आ जाता है।

भली भई जु भै पड्या, गई दसा सब भूलि।  
पाला गलि पानी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि॥73॥

यह बहुत अच्छा हुआ कि मैं अपनी सांसारिक दशा को भूल गया और वास्तविक स्वरूप में परिणत हो गया। यह वैसे ही है जैसे हिम परिणत होकर जल हो जाता है और लुढ़क कर किनारे के जल से विलीन हो जाता है।

चौहट्टै चिंतामणि चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि।  
मीराँ मुझसू मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि॥74॥

जीवन-यात्रा में मैं उस चौराहे पर पहुँच गया हूँ जहाँ प्रभु से साक्षात्कार हो गया है। परन्तु अंतर्मन में स्थित काम, क्रोध, मोह रूपी डाकू मेरी उस अमूल्य निधि को छीन लेना चाहते हैं। हे दया के सागर मेरे ऊपर दया करो जिससे अब मैं इन सबों के चक्कर में न पड़ूँ।

पंखि उड़ानी गगन कौं, पिण्ड रहा परदेस।  
पानी पीया चंचु बिनु, भूलि या यहु देस॥75॥

जीव रूपी पक्षी (हंस) कुण्डलिनी के सहारे सहस्रार तक उड़ गया अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया और यह भौतिक शरीर अपने स्थान पर यों ही पड़ा रहा, जो कि अब उस जीव के लिए परदेश-सा हो गया है। जब जीव को परमतत्त्व का अनुभव नहीं था, तब उसके लिए शरीर स्वदेश और परमतत्त्व परदेश था। अब परमतत्त्व स्वदेश हो गया और शरीर परदेश हो गया। उसने इन्द्रियों के बिना ही आनन्द रस का पान किया और सांसारिक दशा को भूल गया अर्थात् इससे अब उसकी आसक्ति जाती रही।

सुरति समानी निरति मैं, अजपा माँहै जाप।  
लेख समानां अलेख मैं, यौं आपा माँहै आप॥76॥

साधना की प्रगति में साधक स्थूल से सूक्ष्म, शब्द से अशब्द, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष, साकार से निराकार, ससीम से असीम, अहंकार से निरहंकार की ओर बढ़ता चला जाता है और जब वह अशब्द, निराकार, अप्रत्यक्ष और निरहंकार अवस्था पर पहुँचता है, तब उसे ब्रह्म-तत्त्व का वास्तविक दर्शन होता है।

आया था संसार में, देखन कौ बहुत रूप।  
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप॥77॥

कबीर कहते हैं कि हे संतो ! मैंने संसार में अनेक रूप देखने के लिए जन्म लिया था, परन्तु इन्हीं रूपों के भीतर अनुपम तत्त्व, जो अरूप हैं, मेरी दृष्टि में पड़ गया अर्थात् मुझे अनुपम तत्त्व का दर्शन हो गया।

धरती गगन पवन नहिं होता, नहिं तोया नहिं तारा।  
तब हरि हरि के जन हते, कहै कबीर विचारा॥78॥

कबीर कहते हैं कि सृष्टि के पूर्व पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, अग्नि ये पाँचों तत्त्व नहीं थे। उस समय केवल हरि ओर उनके भक्त (जीव), अंशी और अंश ही थे।

जा दिन किरतम नां हता, नहिं हाट नहिं बाटा।  
हुता कबीरा राम जन, जिन देखा औघट घाटा॥79॥

जिस समय यह सृष्टि नहीं थी, संसार रूपी बाजार नहीं था, उस समय केवल रामभक्त आदि गुरु कबीर था, जिसको लक्ष्य तक पहुँचने के कठिन और दुर्गम मार्ग का ज्ञान था।

थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाइ।  
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ॥80॥

सद्गुरु की कृपा से मैं तत्त्व में प्रतिष्ठित हो गया और मेरा मन अब स्थिर हो गया है, उसकी चंचलता जाती रही। मेरे भीतर अनन्य चरितार्थ हो गया और हृदय में भगवान त्रिभुवनपति विराजमान हो गए।

हरि संगति सीतल भया मिटी मोह की ताप।  
निस बासुरि सुखनिधि लहा, (जब) अंतरिप्रगटा आपा॥81॥

अनन्तर में आत्म-दर्शन होने पर प्रभु से तादात्म्य हो गया, मोह की ज्वाला मिट गई और मैं निरन्तर आनन्द-निधि का अनुभव कर रहा हूँ।

तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ।  
ज्वाला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ॥82॥

दर्शन मात्र होने से मन में पूर्ण निश्चय हो गया, संशय हमेशा के लिए समाप्त हो गया। उस स्थिति का मैं शब्द-व्याखन नहीं कर सकता। मोह की ज्वाला जल में परिणत हो गयी। जलती हुई मोह की आग पूर्ण रूप से बुझ गयी अर्थात् परिचय द्वारा पूर्ण शान्ति आ गयी।

जिनि पाया तिन सुगहगह्या, रसनाँ लागी स्वादि।  
रतन निराला पाइया, जगत ढँढोल्या बादि॥83॥

जिन्होंने परम तत्त्व को प्राप्त किया, उन्होंने पूर्ण रूप से हृदय में प्रतिष्ठित कर लिया है, उसके माधुर्य का उन्होंने पूर्ण रूप से आस्वादन किया। उनको एक अनुपम रत्न मिल गया है। वह अब जगत् में और कुछ ढूँढना व्यर्थ समझते हैं अर्थात् परमार्थ के प्राप्त होने पर अन्य अर्थ की क्या आवश्यकता है ?

कबीर दिल साबित भया, पापा फल समरत्था।  
सायत माँहि ढँढोलता, हीरै पड़ि गया हत्था॥84॥

कबीर कहते हैं कि मैं भव-सागर में अपने इष्ट को टटोल रहा था। गुरु कृपा से मेरे हाथ हीरा ही आ गया अर्थात् सर्वोत्कृष्ट इष्ट मुझे प्राप्त हो गया। फिर तो मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया और मैंने जीवन का सर्व-अर्थकारी परमोत्कृष्ट सम्यक्-लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।  
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समौँहि॥85॥

मनुष्य में जब तक अहम विद्यमान रहता है तब तक प्रभु दर्शन दुर्लभ होता है। अहम मिटते ही प्रभु से मिलन हो जाता है। प्रेम की यह विशेषता है कि यद्यपि यह प्रारम्भ दो में होता है, तथापि जब तक द्वैत बना रहता है, तब तक उसमें परिपूर्णता नहीं आती।

जा कारणि मैं ढूँढता, सनमुख मिलिया आइ।  
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सक्कौं पाई॥86॥

जिसके दर्शन के लिए मैं परेशान था वह आज मेरे सम्मुख है। परन्तु मैं इस संकोच में पड़ा हूँ कि कितना पाप-पंकिल, क्षुद्र-जीव हूँ और मेरा प्रिय कितना शुभ्र और महान् कि मैं पैर पकड़ने का भी साहस न कर सका।

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाया ठौर।  
सोई फिरि आपन भया, जाको कहता और॥87॥

जिसके लिए मैं इधर-उधर भटक रहा था, उसको अपने भीतर ही पा लिया। जिसको मैं अन्य कहता था, अब देखता हूँ कि वही वास्तविक अपना है।

कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।  
तेज पुंज पारस धनी, नैननि रहा समाय॥88॥

भाग्योदय हुआ उसका साक्षात्कार हुआ, जो अगम था, जिस तक किसी की पहुँच न थी। उसके गौरव और महात्म्य का वर्णन असम्भव है। वह ज्योति-पूँज है और अपने स्पर्श से पापी को भी पुण्यात्मा बनाने वाला पारस जैसा सौभाग्य-दायक है। अब वह मेरे नेत्रों में समा गया है अर्थात् मेरी दृष्टि से विलुप्त नहीं होता।

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।  
मुकताहल मुकता चुगै, अब उड़ि अनत न जाहिं॥89॥

जीव सुषुम्नामार्ग से पहुँचकर शून्य शिखर पर स्थित अमृत कुंड में केलि कर रहा है और आनन्द रूपी मोती स्वच्छन्द रूप से जी भर कर चुग रहा है। इस आनन्द को छोड़कर वह अन्यत्र सांसारिक विषयों की ओर नहीं जा सकता।

गगन गरजि अमृत चुवै, कदली कँवल प्रकास।  
तहाँ कबीरा बंदगी, कै कोई निज दास॥90॥

आकाश के गर्जन से वह अनहद नाद जो सहस्रार में नित्य हुआ करता है और वहाँ से अमृत के समान शक्ति का क्षरण होता रहता है। मेरुदण्ड की सुषुम्ना नाड़ी में चक्रों का प्रकाश होता रहता है। कबीर कहते हैं कि इस अपूर्व अनुभूति के प्रत्यक्ष होने पर सिर झुक जाता है अथवा कोई और प्रभु का भक्त हो, जिसे यह अनुभूति हो जाय तो उसका सिर झुक जाएगा।

नींव बिहूनां देहरा, देह बिहूनां देव।  
कबीर तहाँ बिलबिया, करै अलख की सेवा॥91॥

शून्य शिखर तक पहुँचने पर जीव को एक ऐसे दिव्य भाव का दर्शन होता है, जिसका सादृश्य स्थूल जगत् में नहीं मिलता। स्थूल जगत् में सुदृढ़ नींव पर बने हुए ईट-पत्थर के देवालय में देव का दर्शन होता है, किन्तु वहाँ पर बिना किसी नींव के देवालय में देव के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है और वह देव भी निराकार होता है। कबीर उसका अनुभव कर उसमें रम गया और अलक्ष्य सत् की सेवा में लग गया।

देवल माँहे देहुरी, तिल जेता बिस्तार।  
माँहे पाती माँहि जल, माँ है पूजन हार॥92॥

इसी शरीर रूपी देवालय में प्रवेश करने के लिए देहली विद्यमान है, जिसकी परिधि तिल के समान सूक्ष्म है। इस देवालय में बाहर से जल, पत्र आदि नहीं लाया जाता, भीतर ही पत्र है, जल है और पूजनेवाला भी है।

कबीर कँवल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।  
निसि अँधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर॥93॥

कबीर कहते हैं कि सहस्रार के प्रकाश का भान हो गया, ज्ञान का सूर्य उदय हो गया, अज्ञान की अँधेरी रात समाप्त हो गई और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी।

आकासे मुखि औँधा कुआँ, पाताले पनिहारि।  
ताका जल कोई हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥94॥

गगम-मण्डल में एक सहस्रार रूपी अधोमुख कुआँ है जिसका मुख नीचे की ओर है, पाताल अर्थात् मूलाधार चक्र में पनिहारिन रूपी कुण्डलिनी स्थित है। जब साधना द्वारा वह सुषुम्ना मार्ग से होकर सहस्रार में पहुँचती है, तब शुद्ध जीव उसके अमृत-जल को पीने में समर्थ होता है। इस मूलतत्त्व पर किसी बिरले ने ही विचार किया है अर्थात् इसे कोई बिरला ही समझता है।

सिव सक्ति दिसि को जुवै, पछिम दिसा उठै धूरि।  
जल में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि॥95॥

सिद्धों, नाथ योगियों और कबीर में 'सक्ति' इड़ा का प्रतीक है और 'सिव' पिंगला का। जब मछली रूपी कुण्डलिनी ऊपर सहस्रार तक पहुँच जाती है, तब सिंह रूपी जीव मानसरोवर में अवगाहन करने लगता है। अर्थात् कुण्डलिनी का जागरण तभी संभव होता है, जब इड़ा-पिंगला में स्थित प्राण-अपान वायु तुल्यबल हो जायँ। किन्तु कोई ऐसा बिरला ही जीव है, जो इस मार्ग का अनुसंधान कर सकता है।

अमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।  
कबीर जुलाहा भया पारखी, अनुभौ उतर्या पार॥96॥

कबीर कहते हैं कि जब शुद्ध अनाहत नाद का परिचय हो जाता है, तब संकल्प-विकल्पात्मक मन उसी में लय को प्राप्त हो जाता है। हमने उसका परिचय प्राप्त कर लिया है और अपने अनुभव से भव-सागर के पार उतर गये हैं।

ममता मेरा क्या करै, प्रेम उधारी पौलि।  
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौलि॥97॥

प्रभु प्रेम ने रहस्य का द्वार खोल दिया। इससे मुझको दयामय प्रभु का दर्शन हो गया। अब ममता मेरा क्या बिगाड़ सकती है? अहं और मम का भाव ही समाप्त हो गया है और भव का कष्ट सुख की चादर बन गया अर्थात् सभी दुरूख आनन्द में परिणत हो गए।



:: लौंबि ::

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।

बूँद समानी समुंद मैं, सो कत हैरी जाइ।।98।।

जैसे बूँद समुद्र को ढूँढते-ढूँढते जब उसमें मिल जाती है, तब उसका पृथक् अस्तित्व नहीं रह जाता है। वैसे ही परम को ढूँढते-ढूँढते मेरा अहं उसी में खो गया और उसका पृथक् अस्तित्व समाप्त हो गया। अर्थात् यह जीव जो पहले नाम-रूप को लेकर 'अहं' बना हुआ था, अब प्रभु की खोज में चलते-चलते नाम-रूप से पृथक् होकर प्रभु से तादात्म्य प्राप्त कर लिया है।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।

समुंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्या जाइ।।99।।

कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्तो ! प्रभु को खोजते-खोजते मैं स्वयं खो गया। समुद्र (अंशी) ने बूँद (अंश) को आत्मसात् कर लिया। अब उस बूँद का पृथक् अस्तित्व कैसे खोजा जा सकता है ? अर्थात् एक बार प्रभु से आत्मसात् होने के पश्चात उससे विरक्त नहीं हुआ जा सकता।

### कबीर साहित्य: कबीर चिंतन

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढ़ता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। सुधार का समन्वित स्वरूप कि उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, वहीं अंधविश्वासों, रूढ, प्रथा, परम्पराओं, अंधविश्वासों पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे, भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है।

प्रचलित धारणाओं के अनुसार, मस्तमोला संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे। कबीर की जन्म तिथि में विभिन्न मतमतांतर हैं, पर विक्रमी सम्वत् के अनुसार पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरा, सोलहवीं का प्रारम्भ व 1455-56 के

आसपास ही इनका जन्मकाल रहा। जन्मस्थान कोई काशी, कोई मगहर तथा कोई बलहरा गाँव आजमगढ़ के पास मानता है।

कबीर जब हुए देश में उथल-पुथल का समय था। मुसलमानों का आगमन, उनका आक्रमण, राज्य स्थापन और यहीं बस जाना, देश के इतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक वर्चस्व कायम करना ही नहीं बल्कि इस्लाम का प्रचार अधिक था। अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में कट्टर विरोधी होकर रहना, हिन्दू समाज को अपने में आत्मसात् करने की भावना से सारा हिन्दू समाज आतंकित एवं भयभीत था। मूर्तियाँ व मंदिर खण्डित होते रहे। इस विषमतापूर्ण समय में हिन्दुओं के समक्ष, अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। ऐसे में पुनरुत्थान कार्य, साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को सामने रखकर किया जाना सम्भव नहीं था। हिन्दुओं में भी विभिन्न मतमतांतर, पंथ, सम्प्रदाय बन चुके थे, जो हिन्दू समाज में अन्तर्विरोध दर्शाते थे। मानना होगा, ऐसी विपरीत स्थितियों के समय में जब हिन्दू संस्कृति, धर्म, जाति को झकझोर दिया गया था—कबीर की समन्वय साधना ने, समाज में पुनरुत्थान का कार्य किया। पुनरुत्थान भक्ति साधना से ही सम्भव था। कबीर का साहित्य इस बात का साक्षी है।

कबीर के पहले तथा समसामयिक युग में भक्ति साधनाओं में सबसे प्रमुख भक्ति साधना ही है। भक्ति आन्दोलन ने भगवान की दृष्टि में सभी के समान होने के सिद्धान्त को फिर दोहराया। कबीर की भक्ति भावना तथ्य से जुड़ी है। भक्तिपथ में भक्ति के द्वारा प्राण स्पंदन देने वालों में कबीर भी प्रमुख हैं। अनेकानेक साधनाओं के अन्तर्विरोध के युग में कबीर जन्मे थे। कबीर के व्यक्तित्व को सभी अन्तर्विरोधों ने प्रभावित किया, इस पर कबीर ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। कबीर में परिस्थितिजन्य निर्णय की अभूतपूर्व क्षमता थी। वह आत्मचिंतन से प्राप्त निष्कर्षों को कसौटी पर कसने में कुशल थे। कबीर ने मानवतावादी तत्त्वग्राही व्यक्तित्व से अपने दृष्टिकोण में मजहबी, वर्गगत अहंकार तथा आचार संहिता की जडकारा में उलझा देने वाले तत्त्वों को भुला त्याग दिया। कबीर नैतिकता से विकसित भगवत्प्रेम में मानव कल्याण समझते हैं। कबीर की दृष्टि में यही मानवता का मूल आधार है। कबीर जीवन का चरम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति मानते हैं। इस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रमुख साधन ज्ञान और प्रेम है। कबीर के अनुसार ज्ञान से मतलब शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति को सहज रूप से ज्ञान होता है। ऐसे ही प्रेम का सहज रूप ही कबीर को मान्य है। कबीर ने आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं

साधना के स्तर पर समन्वय का संदेश दिया है। कबीर संत हैं-भक्त हैं। कबीर ने अपने साहित्य में, भक्ति, प्रेम व सदाचरण से भगवान को प्राप्त करने का संदेश दिया। वस्तुतः कबीर की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी। वर्तमान संदर्भों में उन्होंने आज की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए साधना नहीं की। क्योंकि कबीर के अनुसार साधना से ही मूलतः मानव व प्राणी मात्र का आध्यात्मिक कल्याण है।

कबीर के अनुसार पिंड और ब्रह्माण्ड से भी परे, निर्विशेष तत्त्व है, वही सबसे परे परम तत्त्व है, जिसका अनुभव होने पर भी वाणी में अवर्णनीय है। वह अलख है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड से परे का जो तत्त्व है वही हरि है। उसका कोई रूप नहीं, वह घट-घट में समाया है। कबीर ने इस तत्त्व को कई नामों से व्यक्त किया है। अलख, निरंजन, निरर्भ, निजपद, अभैपद, सहज, उनमन तथा और भी। “गुन में निरगुन, निरगुन में गुन हैं बाट छाड़ क्यों जहिए। अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई॥” इसी चिंतन में कबीर कहते हैं—“जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है—बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी॥” तथा—“पानी ही से हिम भया हिम है गया बिलाई॥”

प्रेम साध्य भी है—साधन भी। प्रेम स्वयं ही प्रेम का वरण करता है। अर्थात् केवल प्रेम के अनुग्रह से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम लौकिक, अलौकिक दोनों स्तर पर एक-सा रहता है। प्रेम वस्तुतः आत्मरति रूप है, अहेतुक होता है। आत्मबोध की सहज स्थिति आत्मरति है। कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम को लौकिक माध्यम से व्यक्त किया—“कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर मांहि॥” कबीर का सौन्दर्य ब्रह्म सविशेष ब्रह्म है, इससे उनके अन्तःकरण में भगवान का प्रेम जागा तो कबीर ने कहा, “संतो भाई आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उडानी, माया रहे न बाँधी रे॥” कबीर के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक का भेद प्रेम की दिव्यता में बाधक नहीं है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं, अनुराग उदय, परिचय, मिलन। कबीर साहित्य में भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों तरह का रहस्यवाद मिलता है। कबीर में भावनात्मक रहस्यवाद की प्रथम अवस्था से ही साधनात्मक रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। “पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिये कूँ साोभा नहीं—देख्या ही परमान॥” वह और भी आगे लिखते हैं—“सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया तब खुले स्वयं दुवार॥” और भी “जो काटो तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ॥”

कबीर साहित्य में साखी कबीर का जीवनदर्शन है। साखी कबीर साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश है। साखियों में कबीर का व्यक्तित्व समग्र रूप से व्यक्त हुआ है। “साखी आँखी ज्ञान की समुझि लेहु मनमाहिं। बिनु साखी संसार का झगडा छूटै नाहिं।।” कबीर साहित्य में गुरु का स्थान सर्वोपरि ईश्वर समकक्ष है। कबीर के अनुसार गुरु शिष्य को मनुष्य से देवता कर देता है। “गुरु गोविन्द दोउ खड़े-काके लागूं पाया। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाया।” सद्गुरु के बारे में कबीर लिखते हैं “ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जन बीसरि जाइ। जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आई।।” इसके विपरीत अज्ञानी गुरु के बारे में कबीर कहते हैं—“जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंता।।” आज के संदर्भों में दार्शनिक कबीर की व्यक्त हुई कुछ-कुछ सटीक-सी लगती भावना “नां गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डावा। दुन्यूं बूडे धार में-चढ पाथर की नाव।”

जैसे ही सुमिरण को अंग, यानी मनन की अवस्था, विनती को अंग अर्थात् भगवान के समक्ष अपनी लघुता की अनुभूति तथा पति परमेश्वर के भाव की अभिव्यक्ति है। कबीर ने इस तरह ‘अंग’ के माध्यम में पचासों अंगों के तहत ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर पर वैदिक विचारधारा, वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था, उन्होंने अपने साहित्य में एकात्मक अद्वैतवाद, ज्ञान तत्त्व, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, अध्यात्म योग, प्रणवोपासना, जन्मान्तरवाद, भगवान के विविध वैष्णवी नाम, ब्रह्म स्वरूपों में श्रद्धा, भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति, योग के भेद, माया तत्त्व आदि के माध्यम से काव्य रचना को संजोया। निर्भीक सुधारवादी संत कबीर ने, भक्ति ही क्या हर क्षेत्र में अंधविश्वासों पर चोट कर, रूढ़ परम्पराओं आडम्बरों से अलग हट, सामाजिक सुधार भरपूर किया। हिन्दू- मुसलमान दोनों के ही साम्प्रदायिक, रूढ़ग्रस्त विचारों की उन्होंने आलोचना की। अपनी सहज अभिव्यक्ति में कबीर ने लिखा—“कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद दी बनाया। ता पर मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।” इतना ही नहीं इससे भी बढकर लिखा “दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाया। यह तो खून औ बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।” ऐसे ही हिन्दुओं के अंधविश्वासों पर उन्होंने चोट की। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का कबीर ने खुला विरोध किया। “पाहन पूजे हरि मिले-तो मैं पूजूं पहार। ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।” कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी था उन्होंने बताया “मूंड मुंडाए हरि मिले, सबही लेऊँ मुंडाए। बार-बार के मूंड ते भेड न बैकुंठ जाए।।” कबीर ने हिन्दुओं के जप-तप, तिलक, छापा, व्रत,

भगवा वस्त्र, आदि की व्यर्थता बताते हुए लिखा—“क्या जप क्या तप संयमी, क्या व्रत क्या अस्नान। जब लागि मुक्ति न जानिए, भाव भक्ति भगवान।।” मरणोपरांत गंगा में अस्थि विसर्जन पर कबीर ने लिखा—“जारि वारि कहि आवे देहा, मूआ पीछे प्रीति सनेहा। जीवित पित्रहि मारे डंडा, मूआ पित्र ले घालै गंगा।।” समाज में कई अस्वस्थ लोकाचारों पर कबीर ने प्रहार किए। वे कहते हैं—यदि मन में छल कपट की गर्द भरी है तो योग भी व्यर्थ है। “हिरदे कपट हरिसँ नहिं सांचो, कहा भयो जो अनहद नाच्यौ।।”

कबीर ने ब्रह्म को करुणामय माना है। ब्रह्म माया, और जीव के सम्बन्ध में कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन है। कबीर निर्गुणोपासक थे। उन्होंने राम के गुणातीत, अगम्य, अगोचर, निरंजन ब्रह्म का वर्णन किया है। मानना होगा भक्ति आन्दोलन के सुधारवादी भक्त कवियों में कबीर का अपना अलग ही स्थान व नाम है। भगवा वस्त्र पहन कर जंगलों की खाक छानने के पक्ष में कबीर नहीं थे। उन्होंने धर्म एवं भक्ति में दिखावे को त्याग, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा आदि को धर्म परिधि से बाहर रखा। कबीर कहते हैं, “काम-क्रोध, तृष्णा तजै, ताहि मिले भगवान।।” राम अर्थात् उनके ब्रह्म में अपने खुद के समर्पण की चरमसीमा देखने योग्य है। “लाली मेरे लाल की, जित देखू तित लाल। लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।” कबीर के बारे में किसी ने यह सही लिखा प्रतीत होता है, “ज्ञान में कबीर परम हंस, कल्पना में योगी, और अनुभूति में प्रिय के प्रेम की भिखारिणी पतिव्रता नारी हो।” कबीर में अतिवाद कहीं भी नहीं। ब्रह्म परमसत्ता को कबीर ने सहजता से सर्वव्यापी बताते हुए कहा—“ना मैं गिरजा ना मैं मंदिर, ना कावे कैलास में। मौको कहाँ ढूँढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।।”

कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा। कबीर ने किसी धर्म विशेष एवं दर्शन की पताका ऊँची नहीं की। वस्तुतः उन्होंने तो अपने को मानवीय तत्त्वों से सम्बद्ध रखा। धर्म व सुधार के नाम पर कबीर ने जनता को उलझाया नहीं, उन्होंने तो खण्डन कर उलझनों से दूर रखा। जनमानस को अभेद की ओर प्रेरित कर भ्रम-माया से दूर रहने की प्रेरणा दी, इसीलिए कबीर मानवतावादी सुधारक माने जाते हैं। कबीर ने ईश्वर प्रेम, भक्ति व साधना में माया को बाधक माना। कबीर ने कहा माया आकर्षक व मनमोहक है। माया आचरण के कारण ही आत्मा अपने परमात्मा रूप को नहीं पहचान पाती। माया ब्रह्म से मिलने नहीं देती। “कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम। मुख कडया को कुमति, कहने न देई राम।।”

# 3

---

## रविदास

---

भारत में 15वीं शताब्दी के एक महान संत, दर्शनशास्त्री, कवि, समाज-सुधारक और ईश्वर के अनुयायी थे। वो निर्गुण संप्रदाय अर्थात् संत परंपरा में एक चमकते नेतृत्वकर्ता और प्रसिद्ध व्यक्ति थे तथा उत्तर भारतीय भक्ति आंदोलन को नेतृत्व देते थे। ईश्वर के प्रति अपने असीम प्यार और अपने चाहने वाले, अनुयायी, सामुदायिक और सामाजिक लोगों में सुधार के लिये अपने महान कविता लेखनों के जरिये संत रविदास ने विविध प्रकार की आध्यात्मिक और सामाजिक संदेश दिये।

वो लोगों की नजर में उनकी सामाजिक और आध्यात्मिक जरूरतों को पूरा करने वाले मसीहा के रूप में थे। आध्यात्मिक रूप से समृद्ध रविदास को लोगों द्वारा पूजा जाता था। हर दिन और रात, रविदास के जन्म दिवस के अवसर पर तथा किसी धार्मिक कार्यक्रम के उत्सव पर लोग उनके महान गीतों आदि को सुनते या पढ़ते हैं। उन्हें पूरे विश्व में प्यार और सम्मान दिया जाता है हालाँकि उन्हें सबसे अधिक सम्मान उत्तर प्रदेश, पंजाब और महाराष्ट्र में अपने भक्ति आंदोलन और धार्मिक गीतों के लिये मिलता था।

### संत रविदास जयंती

पूरे भारत में खुशी और बड़े उत्साह के साथ माघ महीने के पूर्ण चन्द्रमा दिन पर माघ पूर्णिमा पर हर साल संत रविदास की जयंती या जन्म दिवस को मनाया जाता है। जबकि वाराणसी में लोग इसे किसी उत्सव या त्योहार की तरह मनाते हैं।

2020 ( 643 वां ) - 9 फरवरी

इस खास दिन पर आरती कार्यक्रम के दौरान मंत्रों के रागों के साथ लोगों द्वारा एक नगर कीर्तन जुलूस निकालने की प्रथा है जिसमें गीत-संगीत, गाना और दोहा आदि सड़कों पर बने मंदिरों में गाया जाता है। रविदास के अनुयायी और भक्त उनके जन्म दिवस पर गंगा- स्नान करने भी जाते हैं तथा घर या मंदिर में बनी छवि की पूजा-अर्चना करते हैं। इस पर्व को प्रतीक बनाने के लिये वाराणसी के सीर गोवर्धनपुर के श्री गुरु रविदास जन्म स्थान मंदिर के बेहद प्रसिद्ध स्थान पर हर साल वाराणसी में लोगों के द्वारा इसे बेहद भव्य तरीके से मनाया जाता है। संत रविदास के भक्त और दूसरे अन्य लोग पूरे विश्व से इस उत्सव में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिये वाराणसी आते हैं।

**संत रैदास**

( 1433, माघ पूर्णिमा )

प्राचीनकाल से ही भारत में विभिन्न धर्मों तथा मतों के अनुयायी निवास करते रहे हैं। इन सबमें मेल-जोल और भाईचारा बढ़ाने के लिए सन्तों ने समय-समय पर महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। ऐसे सन्तों में रैदास का नाम अग्रगण्य है। वे सन्त कबीर के गुरुभाई थे क्योंकि उनके भी गुरु स्वामी रामानन्द थे। लगभग छः सौ वर्ष पहले भारतीय समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। उसी समय रैदास जैसे समाज-सुधारक सन्तों का प्रादुर्भाव हुआ। रैदास का जन्म काशी में चर्मकार कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम रघु और माता का नाम घुरविनिया बताया जाता है। रैदास ने साधु-सन्तों की संगति से पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। जूते बनाने का काम उनका पैतृक व्यवसाय था और उन्होंने इसे सहर्ष अपनाया। वे अपना काम पूरी लगन तथा परिश्रम से करते थे और समय से काम को पूरा करने पर बहुत ध्यान देते थे।

उनकी समयानुपालन की प्रवृत्ति तथा मधुर व्यवहार के कारण उनके सम्पर्क में आने वाले लोग भी बहुत प्रसन्न रहते थे।

रैदास के समय में स्वामी रामानन्द काशी के बहुत प्रसिद्ध प्रतिष्ठित सन्त थे। रैदास उनकी शिष्य-मण्डली के महत्त्वपूर्ण सदस्य थे।

प्रारम्भ में ही रैदास बहुत परोपकारी तथा दयालु थे और दूसरों की सहायता करना उनका स्वभाव बन गया था। साधु-सन्तों की सहायता करने में उनको विशेष आनन्द मिलता था। वे उन्हें प्रायः मूल्य लिये बिना जूते भेंट कर दिया

करते थे। उनके स्वभाव के कारण उनके माता-पिता उनसे अप्रसन्न रहते थे। कुछ समय बाद उन्होंने रैदास तथा उनकी पत्नी को अपने घर से अलग कर दिया। रैदास पड़ोस में ही अपने लिए एक अलग झोपड़ी बनकार तत्परता से अपने व्यवसाय का काम करते थे और शेष समय ईश्वर-भजन तथा साधु-सन्तों के सत्संग में व्यतीत करते थे।

उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से समय तथा वचन के पालन सम्बन्धी उनके गुणों का पता चलता है। एक बार एक पर्व के अवसर पर पड़ोस के लोग गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे। रैदास के शिष्यों में से एक ने उनसे भी चलने का आग्रह किया तो वे बोले, 'गंगा-स्नान के लिए मैं अवश्य चलता किन्तु एक व्यक्ति को जूते बनाकर आज ही देने का मैंने वचन दे रखा है। यदि आज मैं जूते नहीं दे सका तो वचन भंग होगा। गंगा स्नान के लिए जाने पर मन यहाँ लगा रहेगा तो पुण्य कैसे प्राप्त होगा? मन जो काम करने के लिए अन्तःकरण से तैयार हो वही काम करना उचित है। मन सही है तो इसे कठौते के जल में ही गंगास्नान का पुण्य प्राप्त हो सकता है।' कहा जाता है कि इस प्रकार के व्यवहार के बाद से ही कहावत प्रचलित हो गयी कि—मन चंगा तो कठौती में गंगा।

रैदासे ने ऊँच-नीच की भावना तथा ईश्वर-भक्ति के नाम पर किये जाने वाले विवाद को सारहीन तथा निरर्थक बताया और सबको परस्पर मिलजुल कर प्रेमपूर्वक रहने का उपदेश दिया।

वे स्वयं मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना करते थे और उन्हें भाव-विभोर होकर सुनाते थे। उनका विश्वास था कि राम, कृष्ण, करीम, राघव आदि सब एक ही परमेश्वर के विविध नाम हैं। वेद, कुरान, पुराण आदि ग्रन्थों में एक ही परमेश्वर का गुणगान किया गया है।

“कृष्ण, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा।

वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा॥”

उनका विश्वास था कि ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार, परहित-भावना तथा सद्व्यवहार का पालन करना अत्यावश्यक है। अभिमान त्याग कर दूसरों के साथ व्यवहार करने और विनम्रता तथा शिष्टता के गुणों का विकास करने पर उन्होंने बहुत बल दिया। अपने एक भजन में उन्होंने कहा है—

“कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।

तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खवै॥”



उनके विचारों का आशय यही है कि ईश्वर की भक्ति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। अभिमान शून्य रहकर काम करने वाला व्यक्ति जीवन में सफल रहता है जैसे कि विशालकाय हाथी शक्कर के कणों को चुनने में असमर्थ रहता है जबकि लघु शरीर की पिपीलिका (चींटी) इन कणों को सरलतापूर्वक चुन लेती है। इसी प्रकार अभिमान तथा बड़प्पन का भाव त्याग कर विनम्रतापूर्वक आचरण करने वाला मनुष्य ही ईश्वर का भक्त हो सकता है।

रैदास की वाणी भक्ति की सच्ची भावना, समाज के व्यापक हित की कामना तथा मानव प्रेम से ओत-प्रोत होती थी। इसलिए उसका श्रोताओं के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता था। उनके भजनों तथा उपदेशों से लोगों को ऐसी शिक्षा मिलती थी जिससे उनकी शंकाओं का सन्तोषजनक समाधान हो जाता था और लोग स्वतः उनके अनुयायी बन जाते थे।

उनकी वाणी का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि समाज के सभी वर्गों के लोग उनके प्रति श्रद्धालु बन गये। कहा जाता है कि मीराबाई उनकी भक्ति-भावना से बहुत प्रभावित हुईं और उनकी शिष्या बन गयी थीं।

“वर्णाश्र अभिमान तजि, पद रज बंदहिजासु की।

सन्देह-ग्रन्थि खण्डन-निपन, बानि विमुल रैदास की॥”

आज भी सन्त रैदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपने आचरण तथा व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान नहीं होता है। विचारों की श्रेष्ठता, समाज के हित की भावना से प्रेरित कार्य तथा सद्व्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान बनाने में सहायक होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण सन्त रैदास को अपने समय के समाज में अत्याधिक सम्मान मिला और इसी कारण आज भी लोग इन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

संत कुलभूषण कवि रैदास उन महान् सन्तों में अग्रणी थे जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इनकी रचनाओं की विशेषता लोक-वाणी का अद्भुत प्रयोग रही है जिससे जनमानस पर इनका अमिट प्रभाव पड़ता है।

मधुर एवं सहज संत रैदास की वाणी ज्ञानाश्रयी होते हुए भी ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखाओं के मध्य सेतु की तरह है।

मालवीय सूचना प्रौद्योगिकी केन्द्र द्वारा प्रस्तुत संत रैदास की रचनाओं का यह संकलन ‘गागर में सागर’ समाहित करने का एक लघु प्रयास है जिसके अन्तर्गत संत रैदास के 101 पदों को सम्मिलित किया गया है।

पदावली

1.

॥ राग रामकली॥  
 परचौ राम रमै जै कोइ।  
 पारस परसें दुबिध न होइ॥ टेक॥  
 जो दीसै सो सकल बिनास, अण दीठै नांही बिसवास।  
 बरन रहित कहै जे राम, सो भगता केवल निहकाम॥1॥  
 फल कारनि फलै बनराइं, उपजै फल तब पुहप बिलाइ।  
 ग्यांनहि कारनि क्रम कराईं, उपज्यौ ग्यानं तब क्रम नसाइ॥2॥  
 बटक बीज जैसा आकार, पसर्यौ तीनि लोक बिस्तार।  
 जहाँ का उपज्या तहाँ समाइ, सहज सुन्य में रह्यौ लुकाइ॥3॥  
 जो मन ब्यदै सोई ब्यंद, अमावस मैं ज्यू दीसै चंद।  
 जल मैं जैसैं तूबां तिरै, परचे प्यंड जीवै नहीं मरै॥4॥  
 जो मन कौण ज मन कूँ खाइ, बिन द्वारै त्रीलोक समाइ।  
 मन की महिमां सब कोइ कहै, पंडित सो जे अनभै रहे॥5॥  
 कहै रैदास यहु परम बैराग, राम नाम किन जपऊ सभाग।  
 श्रित कारनि दधि मथै सयांन, जीवन मुकति सदा निब्रानं॥6॥

2.

॥ राग रामकली॥  
 अब मैं हायौं रे भाई।  
 थकित भयौ सब हाल चाल थैं, लोग न बेद बड़ाई॥ टेक॥  
 थकित भयौ गाड़ण अरु नाचण, थाकी सेवा पूजा।  
 काम क्रोध थैं देह थकित भई, कहूँ कहाँ लूँ दूजा॥1॥  
 राम जन होउ न भगत कहाँऊँ, चरन पखालूँ न देवा।  
 जोई-जोई करौ उलटि मोहि बाधै, ताथैं निकटि न भेवा॥2॥  
 पहली ग्यान का कीया चादिणां, पीछैं दीया बुझाई।  
 सुनि सहज मैं दोऊ त्यागे, राम कहूँ न खुदाई॥3॥  
 दूरि बसै षट क्रम सकल अरु, दूरिब कीन्हे सेऊ।  
 ग्यान ध्यान दोऊ दूरि कीन्हे, दूरिब छाड़े तेऊ॥4॥  
 पंचू थकित भये जहाँ-तहाँ, जहाँ-तहाँ थिति पाई।

जा करनि मैं दौर्यौ फिरतौ, सो अब घट मैं पाई॥5॥  
 पंचू मेरी सखी सहेली, तिन निधि दई दिखाई।  
 अब मन फूलि भयौ जग महियां, उलटि आप मैं समाई॥6॥  
 चलत चलत मेरौ निज मन थाक्यौ, अब मोपैं चलयौ न जाई।  
 साई सहजि मिल्यौ सोई सनमुख, कहै रैदास बताई॥7॥

3.

॥ राग रामकली॥  
 गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ।  
 गावणहारा कौ निकटि बताऊँ॥ टेक॥  
 जब लग है या तन की आसा, तब लग करै पुकारा।  
 जब मन मित्यौ आसा नहीं की, तब को गाँवणहारा॥1॥  
 जब लग नदी न संमदि समावै, तब लग बढै अहंकारा।  
 जब मन मिल्यौ राम सागर सूँ, तब यहु मिटी पुकारा॥2॥  
 जब लग भगति मुकति की आसा, परम तत सुणि गावै।  
 जहाँ जहाँ आस धरत है यहु मन, तहाँ तहाँ कछू न पावै॥3॥  
 छाड़ै आस निरास परंमपद, तब सुख सति करि होई।  
 कहै रैदास जासूँ और कहत हैं, परम तत अब सोई॥4॥

4.

॥ राग रामकली॥  
 राम जन हूँ उन भगत कहाऊँ, सेवा करौ न दासा।  
 गुनी जोग जग्य कछू न जानूँ, ताथैं रहूँ उदासा॥ टेक॥  
 भगत हूँ वाँ तौ चढै बड़ाई। जोग करौ जग मानैं।  
 गुणी हूँ वाथैं गुणीं जन कहैं, गुणी आप कूँ जानैं॥1॥  
 ना मैं ममिता मोह न महियाँ, ए सब जाहि बिलाई।  
 दोजग भिस्त दोऊ समि करि जानूँ, दहु वां थैं तरक है भाई॥2॥  
 मै तैं ममिता देखि सकल जग, मैं तैं मूल गँवाई।  
 जब मन ममिता एक एक मन, तब हीं एक है भाई॥3॥  
 कृश्न करीम राम हरि राधौ, जब लग एक एक नहीं पेख्या।  
 बेद कतेब कुरांन पुरांननि, सहजि एक नहीं देख्या॥4॥

जोई जोई करि पूजिये, सोई सोई काची, सहजि भाव सति होई।  
कहै रैदास मैं ताही कूँ पूजौं, जाकै गाँव न ठाँव न नाम नहीं कोई॥5॥

5.

॥ राग रामकली॥

अब मोरी बूड़ी रे भाई।

ता थैं चढ़ी लोग बड़ाई॥ टेक॥

अति अहंकार ऊर मां, सत रज तामैं रह्यौ उरझाई।

करम बलि बसि पर्यौ कछू न सूझै, स्वामी नाऊं भुलाई॥1॥

हम मानूं गुनी जोग सुनि जुगता, हम महा पुरिष रे भाई।

हम मानूं सूर सकल बिधि त्यागी, ममिता नहीं मिटाई॥2॥

मानूं अखिल सुनि मन सोध्यौ, सब चेतनि सुधि पाई।

ग्यांन ध्यान सब हीं हंम जान्यूं, बूझै कौन सूं जाई॥3॥

हम मानूं प्रेम प्रेम रस जान्यूं, नौ बिधि भगति कराई।

स्वांग देखि सब ही जग लटक्यौ, फिरि आपन पौर बधाई॥4॥

स्वांग पहरि हम साच न जान्यूं, लोकनि इहै भरमाई।

स्यंघ रूप देखी पहराई, बोली तब सुधि पाई॥5॥

ऐसी भगति हमारी संतौ, प्रभुता इहै बड़ाई।

आपन अनिन और नहीं मानत, ताथैं मूल गँवाई॥6॥

भणै रैदास उदास ताही थैं, इब कछू मोपैं करी न जाई।

आपौ खोयां भगति होत है, तब रहै अंतरि उरझाई॥7॥

6.

॥ राग रामकली॥

तेरा जन काहे कौं बोलै।

बोलि बोलि अपनीं भगति क्यों खोलै॥ टेक॥

बोल बोलतां बढै बियाधि, बोल अबोलैं जाई।

बोलै बोल अबोल कौं पकरैं, बोल बोलै कूँ खाई॥1॥

बोलै बोल मानि परि बोलैं, बोलै बेद बड़ाई।

उर में धरि धरि जब ही बोलै, तब हीं मूल गँवाई॥2॥

बोलि बोलि औरहि समझावै, तब लग समझि नहीं रे भाई।

बोलि बोलि समझि जब बूझी, तब काल सहित सब खाई॥3॥  
 बोलै गुरु अरु बोलै चेला, बोल्या बोल की परमिति जाई।  
 कहै रैदास थकित भयौ जब, तब हीं परंमनिधि पाई॥4॥

7.

॥ राग रामकली॥  
 भाई रे भ्रम भगति सुजानि।  
 जौ लूँ नहीं साच सूँ पहिचानि॥ टेक॥  
 भ्रम नाचण भ्रम गाइण, भ्रम जप तप दान।  
 भ्रम सेवा भ्रम पूजा, भ्रम सूँ पहिचानि॥1॥  
 भ्रम षट क्रम सकल सहिता, भ्रम गृह बन जानि।  
 भ्रम करि करम कीये, भ्रम की यहु बानि॥2॥  
 भ्रम इंद्रि निग्रह कीयां, भ्रम गुफा में बास।  
 भ्रम तौ लौं जाणियै, सुनि की करै आस॥3॥  
 भ्रम सुध सरिर जौ लौं, भ्रम नाउ बिनाउं।  
 भ्रम भणि रैदास तौ लौं, जो लौं चाहे ठाउं॥4॥

8.

॥ राग रामकली॥  
 त्यूँ तुम्ह कारनि केसवे, अंतरि ल्यौ लागी।  
 एक अनूपम अनभई, किम होइ बिभागी॥ टेक॥  
 इक अभिमानी चातुगा, विचरत जग मांहीं।  
 जदपि जल पूरण मही, कहूं वाँ रुचि नांहीं॥1॥  
 जैसे कामीं देखे कामिनीं, हिरदै सूल उपाई।  
 कोटि बैद बिधि उचरैं, वाकी बिथा न जाई॥2॥  
 जो जिहि चाहे सो मिलै, आरत्य गत होई।  
 कहै रैदास यहु गोपि नहीं, जानैं सब कोई॥3॥

9.

॥ राग रामकली॥  
 आयौ हो आयौ देव तुम्ह सरनां।  
 जानि क्रिया कीजै अपनां जनां॥ टेक॥

त्रिबिधि जोनी बास, जम की अगम त्रस, तुम्हारे भजन बिन, भ्रमत फियौ।  
 ममिता अहं विषै मदि मातौ, इहि सुखि कबहूँ न दूभर तियौ॥1॥  
 तुम्हारे नाइ बेसास, छाडी है आन की आस, संसारी धरम मेरौ मन न धीजै।  
 रैदास दास की सेवा मानि हो देवाधिदेवा, पतितपांवन, नाउ प्रकट  
 कीजै॥2॥

10.

॥ राग रामकली॥  
 भाई रे राम कहाँ हैं मोहि बतावो।  
 सति राम ताकै निकटि न आवो॥ टेक॥  
 राम कहत जगत भुलाना, सो यहु राम न होई।  
 करंम अकरंम करुणामै केसौ, करता नाउं सु कोई॥1॥  
 जा रामहि सब जग जानै, भ्रमि भूले रे भाई।  
 आप आप थैं कोई न जाणै, कहै कौन सू जाई॥2॥  
 सति तन लोभ परसि जीय तन मन, गुण परस नहीं जाई।  
 अखिल नाउं जाकौ ठौर न कतहूँ, क्यूं न कहै समझाई॥3॥  
 भयौ रैदास उदास ताही थैं, करता को है भाई।  
 केवल करता एक सही करि, सति राम तिहि ठाई॥4॥

11.

॥ राग रामकली॥  
 ऐसौ कछु अनभै कहत न आवै।  
 साहिब मेरौ मिलै तौ को बिगरावै॥ टेक॥  
 सब मैं हरि हैं हरि मैं सब हैं, हरि आपनपौ जिनि जानां।  
 अपनी आप साखि नहीं दूसर, जाननहार समांनां॥1॥  
 बाजीगर सूँ रहनि रही जै, बाजी का भरम इब जानां।  
 बाजी झूठ साच बाजीगर, जानां मन पतियानां॥2॥  
 मन थिर होइ तौ काइ न सूझै, जानै जानन हारा।  
 कहै रैदास बिमल बसेक सुख, सहज सरूप संभारा॥3॥

12.

॥ राग रामकली॥

अखि लखि लै नहीं का कहि पंडित, कोई न कहै समझाई।  
 अबरन बरन रूप नहीं जाके, सु कहाँ ल्यौ लाइ समाई॥ टेक॥  
 चंद सूर नहीं राति दिवस नहीं, धरनि अकास न भाई।  
 करम अकरम नहीं सुभ असुभ नहीं, का कहि देहु बड़ाई॥1॥  
 सीत बाइ उश्न नहीं सरवत, कांम कुटिल नहीं होई।  
 जोग न भोग रोग नहीं जाकै, कहौ नांव सति सोई॥2॥  
 निरंजन निराकार निरलेपहि, निरबिकार निरासी।  
 काम कुटिल ताही कहि गावत, हर हर आवै हासी॥3॥  
 गगन धूर धूसर नहीं जाकै, पवन पूर नहीं पांनी।  
 गुन बिगुन कहियत नहीं जाकै, कहौ तुम्ह बात सयांनी॥4॥  
 याही सँ तुम्ह जोग कहते हौ, जब लग आस की पासी।  
 छूटै तब हीं जब मिलै एक ही, भणै रैदास उदासी॥5॥

13.

॥ राग रामकली॥

नरहरि चंचल मति मोरी।  
 कैसैं भगति करौ रांम तोरी॥ टेक॥  
 तू कोहि देखै हूँ तोहि देखैं, प्रीती परस्पर होई।  
 तू मोहि देखै हौं तोहि न देखौं, इहि मति सब बुधि खोई॥1॥  
 सब घट अंतरि रमसि निरंतरि, मैं देखत ही नहीं जानां।  
 गुन सब तोर मोर सब औगुन, क्रित उपगार न मानां॥2॥  
 मैं तैं तोरि मोरी असमझ सों, कैसे करि निसतारा।  
 कहै रैदास कृश्न करुणामैं, जै जै जगत अधारा॥3॥

14.

॥ राग रामकली॥

राम बिन संसै गाँठि न छूटै।  
 कांम क्रोध मोह मद माया, इन पंचन मिलि लूटै॥ टेक॥  
 हम बड़ कवि कुलीन हम पंडित, हम जोगी संन्यासी।

ग्यांनी गुनीं सूर हम दाता, यहु मति कदे न नासी॥1॥  
 पढें गुनें कछू संमझि न परई, जौ लौ अनभै भाव न दरसै।  
 लोहा हरन होइ धूँ कैसें, जो पारस नहीं परसै॥2॥  
 कहै रैदास और असमझिसि, भूलि परै भ्रम भोरे।  
 एक अधार नांम नरहरि कौ, जीवनि प्रांन धन मोरै॥3॥

15.

॥ राग रामकली॥  
 तब रांम रांम कहि गावैगा।  
 ररंकार रहित सबहिन थैं, अंतरि मेल मिलावैगा॥ टेक॥  
 लोहा सम करि कंचन समि करि, भेद अभेद समावैगा।  
 जो सुख कै पारस के परसैं, तो सुख का कहि गावैगा॥1॥  
 गुर प्रसादि भई अनभै मति, विष अमृत समि धावैगा।  
 कहै रैदास मेटि आपा पर, तब वा ठौरहि पावैगा॥2॥

16.

॥ राग रामकली॥  
 संतौ अनिन भगति यहु नाहीं।  
 जब लग सत रज तम पांचूँ गुण ब्यापत हैं या मांही॥ टेक॥  
 सोइ आंन अंतर करै हरि सूँ, अपमारग कूँ आनैं।  
 कांम क्रोध मद लोभ मोह की, पल पल पूजा ठानैं॥1॥  
 सति सनेह इष्ट अंगि लावै, अस्थलि अस्थलि खेलै।  
 जो कुछ मिलै आनि अखित ज्युं, सुत दारा सिरि मेलै॥2॥  
 हरिजन हरि बिन और न जानैं, तजै आंन तन त्यागी।  
 कहै रैदास सोई जन त्रिमल, निसदिन जो अनुरागी॥3॥

17.

॥ राग रामकली॥  
 ऐसी भगति न होइ रे भाई।  
 रांम नांम बिन जे कुछ करिये, सो सब भरम कहाई॥ टेक॥  
 भगति न रस दांन, भगति न कथै ग्यांन, भगत न बन मैं गुफा खुँदाई।



भगति न ऐसी हासि, भगति न आसा पासि, भगति न यहु सब कुल कानि  
गँवाई॥1॥

भगति न इंद्री बाधे, भगति न जोग साधे, भगति न अहार घटायें, ए सब  
क्रम कहाई।

भगति न निद्रा साधे, भगति न बैराग साधे, भगति नहीं यहु सब बेद  
बड़ाई॥2॥

भगति न मूँड मुड़ाये, भगति न माला दिखाये, भगत न चरन धुवाये, ए सब  
गुनी जन कहाई।

भगति न तौ लौं जानीं, जौ लौं आप कूँ आप बखानीं, जोई जोई करै सोई  
क्रम चढ़ाई॥3॥

आपौ गयौ तब भगति पाई, ऐसी है भगति भाई, राम मिल्यौ आपौ गुण  
खोयौ, रिधि सिधि सबै जु गँवाई।

कहै रैदास छूटी ले आसा पास, तब हरि ताही के पास, आतमां स्थिर तब  
सब निधि पाई॥4॥

18.

॥ राग रामकली॥

भगति ऐसी सुनहु रे भाई।

आई भगति तब गई बड़ाई॥ टेक॥

कहा भयौ नाचों अरु गायें, कहों भयौ तप कीन्हें।

कहा भयौ जे चरन पखालै, जो परम तत नहीं चीन्हें॥1॥

कहा भयौ जू मूँड मुंड़ायौ, बहु तीरथ ब्रत कीन्हें।

स्वामी दास भगत अरु सेवग, जो परम तत नहीं चीन्हें॥2॥

कहै रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।

तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपलक होइ चुणि खारवै॥3॥

19.

॥ राग रामकली॥

अब कुछ मरम बिचारा हो हरि।

आदि अंति औसाण राम बिन, कोई न करै निरवारा हो हरि॥ टेक॥

जल मैं पंक पंक अमृत जल, जलहि सुधा कै जैसेँ।

ऐसैं करमि धरमि जीव बाँध्यौ, छूटै तुम्ह बिन कैसैं हो हरि।।1।।  
 जप तप बिधि निषेद करुणामैं, पाप पुनि दोऊ माया।  
 अस मो हित मन गति विमुख धन, जनमि जनमि डहकाया हो हरि।।2।।  
 ताड़ण, छेदण, त्रयण, खेदण, बहु बिधि करि ले उपाई।  
 लूण खड़ी संजोग बिनां, जैसैं कनक कलंक न जाई।।3।।  
 भगैं रैदास कठिन कलि केवल, कहा उपाइ अब कीजै।  
 भौ बूड़त भैभीत भगत जन, कर अवलंबन दीजै।।4।।

20.

॥ राग रामकली॥  
 नरहरि प्रगटसि नां हो प्रगटसि नां।  
 दीनानाथ दयाल नरहरि॥ टेक॥  
 जन मैं तोही थैं बिगरां न अहो, कछू बूझत हूँ रसयांन।  
 परिवार बिमुख मोहि लाग, कछू समझि परत नहीं जागा।।1।।  
 इक भंमदेस कलिकाल, अहो मैं आइ पर्यौ जंम जाल।  
 कबहूँक तोर भरोस, जो मैं न कहूँ तो मोर दोस।।2।।  
 अस कहियत तेऊ न जान, अहो प्रभू तुम्ह श्रबंगि सयांन।  
 सुत सेवक सदा असोच, ठाकुर पितहि सब सोच।।3।।  
 रैदास बिनवैं कर जोरि, अहो स्वांमीं तोहि नाहि न खोरि।  
 सु तौ अपूरबला अक्रम मोर, बलि बलि जाऊं करौ जिनि और।।4।।

21.

॥ राग रामकली॥  
 त्यू तुम्ह कारन केसवे, लालचि जीव लाग।  
 निकटि नाथ प्रापति नहीं, मन मंद अभागा।। टेक॥  
 साइर सलिल सरोदिका, जल थल अधिकाई।  
 स्वांति बूँद की आस है, पीव प्यास न जाई।।1।।  
 जो रस नेही चाहिए, चितवत हूँ दूरी।  
 पंगल फल न पहुँचई, कछू साध न पूरी।।2।।  
 कहै रैदास अकथ कथा, उपनषद सुनी जै।  
 जस तूँ तस तूँ तस तूँ हीं, कस ओपम दीजै।।3।।

22.

॥ राग रामकली॥

गौब्यंदे भौ जल ब्याधि अपारा।

तामैं कछू सूझत वार न पारा॥ टेक॥

अगम ग्रेह दूर दूरंतर, बोलि भरोस न देहू।

तेरी भगति परोहन, संत अरोहन, मोहि चढ़ाइ न लेहू॥1॥

लोह की नाव पखांनि बोझा, सुकृत भाव बिहूनां।

लोभ तरंग मोह भयौ पाला, मीन भयौ मन लीना॥2॥

दीनानाथ सुनहु बीनती, कौनै हेतु बिलंबे।

रैदास दास संत चरन, मोहि अब अवलंबन दीजै॥3॥

23.

॥ राग रामकली॥

कहा सूते मुगध नर काल के मंझि मुख।

तजि अब सति राम च्यंतत अनेक सुख॥ टेक॥

असहज धीरज लोप, कृशुन उधरन कोप, मदन भवंग नहीं मंत्र जंत्र।

विषम पावक झाल, ताहि वार न पार, लोभ की श्रपनी ग्यानं हंता॥1॥

विषम संसार भौ लहरि ब्याकुल तवै, मोह गुण विषै सन बंध भूता।

टेरि गुर गारडी मंत्र श्रवणं दीयौ, जागि रे राम कहि कांइ सूता॥2॥

सकल सुमृति जिती, संत मिति कहैं तिती, पाइ नहीं पनंग मति परंम बेता।

ब्रह्म रिषि नारदा स्यंभ सनिकादिका, राम रमि रमत गये परितेता॥3॥

जजनि जाप निजाप रटणि तीर्थ दान, वोखदी रसिक गदमूल देता।

नाग दवणि जरजरी, राम सुमिरन बरी, भणत रैदास चेतनि चेता॥4॥

24.

॥ राग रामकली॥

कान्हां हो जगजीवन मोरा।

तू न बिसारीं राम मैं जन तोरा॥ टेक॥

संकुट सोच पोच दिन राती, करम कठिन मेरी जाति कुभाती॥1॥

हरहु बिपति भावै करहु कुभाव, चरन न छाडूँ जाइ सु जाव।

कहै रैदास कछु देऊ अवलंबन, बेगि मिलौ जनि करहु बिलंबन॥2॥

25.

॥ राग रामगरी॥

सेई मन संमझि समरंथ सरनांगता।

जाकी आदि अति मधि कोई न पावै॥

कोटि कारिज सरै, देह गुन सब जरै, नैक जौ नाम पतिव्रत आवै॥ टेक॥

आकार की वोट आकार नहीं उबरै, स्यो बिरंच अरु बिसन ताई।

जास का सेवग तास कौं पाई है, ईस कौं छांड़ि आगै न जाही॥१॥

गुणंमई मूरति सोई सब भेख मिलि, निग्रुण निज ठौर विश्राम नांही।

अनेक जूग बंदिगी बिबिध प्रकार करि, अति गुण सेई गुण मैं समांही॥२॥

पाँच तत तीनि गुण जूगति करि करि साईया, आस बिन होत नहीं करम काया।

पाप पूनि बीज अंकूर जांमै मरै, उपजि बिनसै तिती श्रब माया॥३॥

क्रितम करता कहैं, परम पद क्यूँ लहैं, भूलि भ्रम मैं पर्यौ लोक सारा।

कहै रैदास जे रांम रमिता भजै, कोई ऐक जन गये उतरि पारा॥४॥

26.

॥ राग रामकली॥

है सब आतम सोयं प्रकास साँचो।

निरंतरि निराहार कलपित ये पाँचौं॥ टेक॥

आदि मध्य औसान, येक रस तारतंब नहीं भाई।

थावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रहे हरिराई॥१॥

सरवेसुर श्रवपति सब गति, करता हरता सोई।

सिव न असिव न साध अरु सेवक, उभै नहीं होई॥२॥

ध्रम अध्रम मोच्छ नहीं बंधन, जुरा मरण भव नासा।

दृष्टि अदृष्टि गेय अरु -ज्ञाता, येकमेक रैदासा॥३॥

27.

॥ राग गौड़ी॥

कोई सुमार न देखौं, ए सब ऊपिली चोभा।

जाकौं जेता प्रकासै, ताकौं तेती ही सोभा॥ टेक॥

हम ही पै सीखि सीखि, हम हीं सँ मांडै।

थोरै ही इतराइ चालै, पातिसाही छाडै।।1।।  
 अति हीं आतुर बहै, काचा हीं तोरै।  
 कुंडै जलि पैसै, न हींयां डरै खोरै।।2।।  
 थोरैं थोरैं मुसियत, परायौ धनां।  
 कहै रैदास सुनौं, संत जनां।।3।।

28.

॥ राग जंगली गौड़ी॥  
 पहलै पहरै रैणि दै बणजारिया, तै जनम लीया संसार वै॥  
 सेवा चुका राम की बणजारिया, तेरी बालक बुधि गँवार वे॥  
 बालक बुधि गँवार न चेत्या, भुला माया जालु वे॥  
 कहा होइ पीछैं पछतायैं, जल पहली न बँधीं पाल वे॥  
 बीस बरस का भया अयांनां, थंभि न सक्या भार वे॥  
 जन रैदास कहै बनजारा, तैं जनम लया संसार वै॥1।।  
 दूजै पहरै रैणि दै बनजारिया, तूँ निरखत चल्या छावं वे॥  
 हरि न दामोदर ध्याइया बनजारिया, तैं लेइ न सक्या नांव वे॥  
 नाउं न लीया औगुन कीया, इस जोबन दै ताण वे॥  
 अपणीं पराई गिणीं न काई, मंदे कम कमाण वे॥  
 साहिब लेखा लेसी तूँ भरि देसी, भीड़ पड़ै तुझ तांव वे॥  
 जन रैदास कहै बनजारा, तू निरखत चल्या छावं वे॥2।।  
 तीजै पहरै रैणि दै बनजारिया, तेरे ढिलढे पड़े पराण वे॥  
 काया रवनीं क्या करै बनजारिया, घट भीतरि बसै कुजाण वे॥  
 इक बसै कुजाण काया गढ़ भीतरि, अहलां जनम गवाया वे॥  
 अब की बेर न सुकृत कीता, बहुरि न न यहु गढ़ पाया वे॥  
 कपी देह काया गढ़ खीनां, फिरि लगा पछिताणवे॥  
 जन रैदास कहै बनजारा, तेरे ढिलढे पड़े पराण वे॥3।।  
 चौथे पहरै रैणि दै बनजारिया, तेरी कपण लगी देह वे॥  
 साहिब लेखा मंगिया बनजारिया, तू छडि पुराणां थेह वे॥  
 छडि पुराणं ज्यंद अयाणां, बालदि हाकि सबेरिया॥  
 जम के आये बंधि चलाये, बारी पुगी तेरिया॥

पंथि चलै अकेला होइ दुहेला, किस कूँ देइ सनेहं वे॥  
जन रैदास कहै बनिजारा, तेरी कपण लगी देह वे॥4॥

29.

॥ राग जंगली गौड़ी॥  
देवा हम न पाप करंता।  
अहो अनंता पतित पावन तेरा बिड़द ब्यू होता॥ टेक॥  
तोही मोही मोही तोही अंतर ऐसा।  
कनक कुटक जल तरंग जैसा॥1॥  
तुम हीं मैं कोई नर अंतरजांमी।  
ठाकुर थैं जन जाणिये, जन थैं स्वांमीं॥2॥  
तुम सबन मैं, सब तुम्ह मांहीं।  
रैदास दास असझसि, कहै कहाँ ही॥3॥

30.

॥ राग जंगली गौड़ी॥  
या रमां एक तू दांनं, तेरा आदू बैशनौं।  
तू सुलितान सुलितानां बंदा सकिसंता रजांनं॥ टेक॥  
मैं बेदियानत बदनजर दे, गोस गैर गुफतार।  
बेअदब बदबखत बीरां, बेअकलि बदकार॥1॥  
मैं गुनहगार गुमराह गाफिल, कंम दिला करतार।  
तूँ दयाल ददि हद दांवन, मैं हिरसिया हुसियार॥2॥  
यहु तन हस्त खस्त खराब, खातिर अंदेसा बिसियार।  
रैदास दास असांन, साहिब देहु अब दीदार॥3॥

31.

॥ राग गौड़ी॥  
अब हम खूब बतन घर पाया।  
उहाँ खैर सदा मेरे भाया॥ टेक॥  
बेगमपुर सहर का नाउं, फिकर अंदेस नहीं तिहि ठाँव॥1॥  
नही तहाँ सीस खलात न मार, है फन खता न तरस जवाल॥2॥

आंवन जान रहम महसूर, जहाँ गनियाव बसै माबूँद॥3॥  
जोई सैल करै सोई भावै, महरम महल मैं को अटकावै॥4॥  
कहै रैदास खलास चमारा, सो उस सहरि सो मीत हमारा॥5॥

32.

॥ राग गौड़ी॥  
राम गुसईआ जीअ के जीवना।  
मोहि न बिसारहु मैं जनु तेरा॥ टेक॥  
मेरी संगति पोच सोच दिनु राती। मेरा करमु कटिलता जनमु कृभाति॥1॥  
मेरी हरहु बिपति जन करहु सुभाई। चरण न छाडउ सरीर कल जाई॥2॥  
कहु रविदास परउ तेरी साभा। बेगि मिलहु जन करि न बिलंबा॥3॥

33.

॥ राग गौड़ी पूर्वी॥  
सगल भव के नाइका।  
इकु छिनु दरसु दिखाइ जी॥ टेक॥  
कूप भरिओ जैसे दादिरा, कछु देसु बिदेसु न बूझ।  
ऐसे मेरा मन बिखिआ बिमोहिआ, कछु आरा पारु न सूझ॥1॥  
मलिन भई मति माधव, तेरी गति लखी न जाइ।  
करहु क्रिपा भ्रमु चूकई, मैं सुमति देहु समझाइ॥2॥  
जोगीसर पावहि नहीं, तुअ गुण कथन अपार।  
प्रेम भगति कै कारणै, कहु रविदास चमारा॥3॥

34.

॥ राग गौड़ी बैरागणि॥  
मो सउ कोऊ न कहै समझाइ।  
जाते आवागवनु बिलाइ॥ टेक॥  
सतजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार।  
तीनौ जुग तीनौ दिडे कलि केवल नाम अधार॥1॥  
पार कैसे पाइबो रे।  
बहु बिधि धरम निरूपीऐ करता दीसै सभ लोइ।

कवन करम ते छूटी ऐ जिह साधे सभ सिधि होई॥2॥  
 करम अकरम बीचारी ए संका सुनि बेद पुरान।  
 संसा सद हिरदै बसै कउनु हिरै अभिमानु॥3॥  
 बाहरु उदकि पखारीऐ घट भीतरि बिबिध बिकार।  
 सुध कवन पर होइबो सुव कुंजर बिधि बिउहार॥4॥  
 रवि प्रगास रजनी जथा गति जानत सभ संसार।  
 पारस मानो ताबो छुए कनक होत नहीं बार॥5॥  
 परम परस गुरु भेटीऐ पूरब लिखत लिलाट।  
 उनमन मन मन ही मिले छुटकत बजर कपाट॥6॥  
 भगत जुगति मति सति करी भ्रम बंधन काटि बिकार।  
 सोई बसि रसि मन मिले गुन निरगुन एक बिचार॥7॥  
 अनिक जतन निग्रह कीए टारी न टरै भ्रम फास।  
 प्रेम भगति नहीं उपजै ता ते रविदास उदास॥8॥

35.

॥ राग गौड़ी॥  
 मरम कैसैं पाइबौ रे।  
 पंडित कोई न कहै समझाइ, जाथैं मरौ आवागवन बिलाइ॥ टेक॥  
 बहु बिधि धरम निरूपिये, करता दीसै सब लोई।  
 जाहि धरम भ्रम छूटिये, ताहि न चीन्हैं कोई॥1॥  
 अक्रम क्रम बिचारिये, सुण संक्या बेद पुरांन।  
 बाकै हदै भै भ्रम, हरि बिन कौन हरै अभिमान॥2॥  
 सतजुग सत त्रेता तप, द्वापरि पूजा आचार।  
 तीन्युं जुग तीन्युं दिढी, कलि केवल नांव अधार॥3॥  
 बाहरि अंग पखालिये, घट भीतरि बिबिध बिकार।  
 सुचि कवन परिहोइये, कुंजर गति ब्यौहार॥4॥  
 रवि प्रकास रजनी जथा, गत दीसै संसार पारस मनि तांबौ छिवै।  
 कनक होत नहीं बार, धन जोबन प्रभु नां मिलै॥5॥  
 ना मिलै कुल करनी आचार।  
 एकै अनेक बिगाइया, ताकौं जाणैं सब संसार॥6॥  
 अनेक जतन करि टारिये, टारी टरै न भ्रम पास।  
 प्रेम भगति नहीं उपजै, ताथैं रैदास उदास॥7॥



36.

॥ राग गौड़ी॥

जीवत मुकंदे मरत मुकंदे।

ताके सेवक कउ सदा अनंदे॥ टेक॥

मुकंद-मुकंद जपहु संसार। बिन मुकंद तनु होइ अउहार।

सोई मुकंदे मुकति का दाता। सोई मुकंदु हमरा पित माता॥1॥

मुकंद-मुकंदे हमारे प्रानं। जपि मुकंद मसतकि नीसानं।

सेव मुकंदे करै बैरागी। सोई मुकंद दुरबल धनु लाधी॥2॥

एक मुकंदु करै उपकारू। हमरा कहा करै संसारू।

मेटी जाति हूए दरबारि। तुही मुकंद जोग जुगतारि॥3॥

उपजिओ गिआनु हूआ परगास। करि किरपा लीने करि दास।

कहु रविदास अब त्रिसना चूकी। जपि मुकंद सेवा ताहू की॥4॥

37.

॥ राग गौड़ी॥

साध का निंदकु कैसे तरै।

सर पर जानहु नरक ही परै॥ टेक॥

जो ओहु अठिसठि तीरथ न्हावै। जे ओहु दुआदस सिला पूजावै।

जे ओहु कूप तटा देवावै। करै निंद सभ बिरथा जावै॥1॥

जे ओहु ग्रहन करै कुलखेति। अरपै नारि सीगार समेति।

सगली सिंग्रिति स्रवनी सुनै। करै निंद कवनै नहीं गुनै॥2॥

जो ओहु अनिक प्रसाद करावै। भूमि दान सोभा मंडपि पावै।

अपना बिगारि बिरांना साढै। करै निंद बहु जोनी हाढै॥3॥

निंदा कहा करहु संसारा। निंदक का प्ररगटि पाहारा।

निंदकु सोधि साधि बीचारिआ। कहु रविदास पापी नरकि सिधारिआ॥4॥

38.

॥ राग आसावरी (आसा)॥

केसवे बिकट माया तोर।

ताथैं बिकल गति मति मोर॥ टेक॥

सु विष डसन कराल अहि मुख, ग्रसित सुठल सु भेख।

निरखि माखी बकै व्याकुल, लोभ काल न देखे॥1॥  
 इन्द्रीयादिक दुख दारुन, असंख्यादिक पाप।  
 तोहि भजत रघुनाथ अंतरि, ताहि त्रस न ताप॥2॥  
 प्रतंग्या प्रतिपाल चहुँ जुगि, भगति पुरवन कांम।  
 आस तोर भरोस है, रैदास जै जै राम॥3॥

39.

॥ राग आसावरी॥  
 बरजि हो बरजि बीठल, माया जग खाया।  
 महा प्रबल सब हीं बसि कीये, सुर नर मुनि भरमाया॥ टेक॥  
 बालक बिरधि तरुन अति सुंदरि, नांनां भेष बनावै।  
 जोगी जती तपी संन्यासी, पंडित रहण न पावै॥1॥  
 बाजीगर की बाजी कारनि, सबकौ कौतिग आवै।  
 जो देखै सो भूलि रहै, वाका चेला मरम जु पावै॥2॥  
 खंड ब्रह्मड लोक सब जीते, ये ही बिधि तेज जनावै।  
 स्वंभू कौ चित चोरि लीयौ है, वा कै पीछें लगा धावै॥3॥  
 इन बातनि सुकचनि मरियत है, सबको कहै तुम्हारी।  
 नैन अटकि किनि राखौ केसौ, मेटहु बिपति हमारी॥4॥  
 कहै रैदास उदास भयौ मन, भाजि कहाँ अब जइये।  
 इत उत तुम्ह गौब्यंद गुसाईं, तुम्ह ही माहि समइयै॥5॥

40.

॥ राग आसा॥  
 रामहि पूजा कहाँ चढ़ाऊँ।  
 फल अरु फूल अनूप न पाऊँ॥ टेक॥  
 थनहर दूध जु बछ जुठार्यौ, पहुप भवर जल मीन बिटार्यौ।  
 मलियागिर बेधियौ भवंगा, विष अंम्रित दोऊँ एकै संगे॥1॥  
 मन हीं पूजा मन हीं धूप, मन ही सेऊँ सहज सरूप॥2॥  
 पूजा अरचा न जानूं राम तेरी, कहै रैदास कवन गति मेरी॥3॥

41.

॥ राग आसा ॥

बंदे जानि साहिब गनीं।

संमझि बेद कतेब बोलै, ख्वाब मैं क्या मनीं ॥ टेक ॥

ज्वांनीं दुनी जमाल सूरति, देखिये थिर नाहि बे।

दम छसै सहंम्र इकवीस हरि दिन, खजांनैं थैं जाहि बे ॥ 1 ॥

मतीं मारे ग्रब गाफिल, बेमिहर बेपीर बे।

दरी खानैं पड़ै चोभा, होत नहीं तकसीर बे ॥ 2 ॥

कुछ गाँठि खरची मिहर तोसा, खैर खूबी हाथि बे।

धर्णीं का फुरमान आया, तब कीया चालै साथ बे ॥ 3 ॥

तजि बद जबां बेनजरि कम दिल, करि खसकी काणि बे।

रैदास की अरदास सुणि, कछू हक हलाल पिछाणि बे ॥ 4 ॥

42.

॥ राग आसा ॥

सु कछु बिचार्यौं ताथैं मेरौ मन थिर के रह्यौ।

हरि रंग लागौ ताथैं बरन पलट भयौ ॥ टेक ॥

जिनि यहु पंथी पंथ चलावा, अगम गवन मैं गमि दिखलावा ॥ 1 ॥

अबरन बरन कथैं जिनि कोई, घटि घटि ब्यापि रह्यौ हरि सोई ॥ 2 ॥

जिहि पद सुर नर प्रेम पियासा, सो पद्म रमि रह्यौ जन रैदासा ॥ 3 ॥

43.

॥ राग आसा ॥

माधौ संगति सरनि तुम्हारी।

जगजीवन कृश्न मुरारी ॥ टेक ॥

तुम्ह मखतूल गुलाल चत्रभुज, मैं बपुरौ जस कीरा।

पीवत डाल फूल रस अमृत, सहजि भई मति हीरा ॥ 1 ॥

तुम्ह चंदन मैं अरंड बापुरौ, निकटि तुम्हारी बासा।

नीच बिरख थैं ऊँच भये, तेरी बास सुबास निवासा ॥ 2 ॥

जाति भी वोंछी जनम भी वोछा, वोछा करम हमारा।

हम सरनागति राम राइ की, कहै रैदास बिचारा ॥ 3 ॥

44.

॥ राग आसा॥

माधौ अविद्या हित कीन्ह।

ताथैं मैं तोर नांव न लीन्ह॥ टेक॥

मिग्र मीन भ्रिग पतंग कुंजर, एक दोस बिनास।

पंच ब्याधि असाधि इहि तन, कौन ताकी आसा॥1॥

जल थल जीव जंत जहाँ-जहाँ लौं करम पासा जाइ।

मोह पासि अबध बाधौ, करियै कौण उपाइ॥2॥

त्रिजुग जोनि अचेत संम भूमि, पाप पुन्य न सोच।

मानिषा अवतार दुरलभ, तिहू संकुट पोच॥3॥

रैदास दास उदास बन भव, जप न तप गुरु ग्यांन।

भगत जन भौ हरन कहियत, ऐसै परंम निधान॥4॥

45.

॥ राग आसा॥

देहु कलाली एक पियाला।

ऐसा अवधू है मतिवाला॥ टेक॥

ए रे कलाली तैं क्या कीया, सिरकै सा तैं प्याला दीया॥1॥

कहै कलाली प्याला देऊँ, पीवनहारे का सिर लेऊँ॥2॥

चंद सूर दोऊ सनमुख होई, पीवै पियाला मरै न कोई॥3॥

सहज सुनि मैं भाठी सरवै, पीवै रैदास गुर मुखि दरवै॥4॥

46.

॥ राग आसा॥

संत ची संगति संत कथा रसु।

संत प्रेम माझै दीजै देवा देव॥ टेक॥

संत तुझी तनु संगति प्रान। सतिगुर गिआन जानै संत देवा देव॥1॥

संत आचरण संत चो मारगु। संत च ओल्हग ओल्हगणी॥2॥

अउर इक मागउ भगति चिंतामणि। जणी लखावहु असंत पापी सणि॥3॥

रविदास भणै जो जाणै सो जाणु। संत अनंतहि अंतरु नाही॥4॥

47.

॥ राग आसा॥

तुझहि चरन अरबिंद भँवर मनु।

पान करत पाइओ, पाइओ रामईआ धनु॥ टेक॥

कहा भइओ जउ तनु भइओ छिनु छिनु। प्रेम जाइ तउ डरपै तेरो जनु॥1॥

संपति बिपति पटल माइआ धनु। ता महि भगत होत न तेरो जनु॥2॥

प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन। कहि रविदास छूटिबो कवन गुनै॥3॥

48.

॥ राग आसा॥

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे।

हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे॥ टेक॥

हरि के नाम कबीर उजागर। जनम जनम के काटे कागर॥1॥

निमत नामदेउ दूधु पीआइया। तउ जग जनम संकट नहीं आइआ॥2॥

जनम रविदास राम रंगि राता। इउ गुर परसादि नरक नहीं जाता॥3॥

49.

॥ राग आसा॥

माटी को पुतरा कैसे नचतु है।

देखै देखै सुनै बोलै दउरिओ फिरतु है॥ टेक॥

जब कुछ पावै तब गरबु करतु है। माइआ गई तब रोवनु लगतु है॥1॥

मन बच क्रम रस कसहि लुभाना। बिनसि गइआ जाइ कहूँ समाना॥2॥

कहि रविदास बाजी जगु भाई। बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आई॥3॥

50.

॥ राग आसा॥

भाई रे सहज बन्दी लोई, बिन सहज सिद्धि न होई।

लौ लीन मन जो जानिये, तब कीट भूंगी होई॥ टेक॥

आपा पर चीन्हे नहीं रे, और को उपदेस।

कहाँ ते तुम आयो रे भाई, जाहुगे किस देस॥1॥

कहिये तो कहिये काहि कहिये, कहाँ कौन पतियाइ।  
रैदास दास अजान है करि, रह्यो सहज समाइ॥2॥

51.

॥ राग आसा॥  
ऐसी मेरी जाति भिख्यात चमारं।  
हिरदै राम गौब्यंद गुन सारं॥ टेक॥  
सुरसुरी जल लीया क्रित बारूणी रे, जैसे संत जन करता नहीं पांन।  
सुरा अपवित्र नित गंग जल मानियै, सुरसुरी मिलत नहीं होत आंन॥1॥  
ततकरा अपवित्र करि मानियै, जैसें कागदगर करत बिचारं।  
भगत भगवंत जब ऊपरै लेखियै, तब पूजियै करि नमसकारं॥2॥  
अनेक अधम जीव नाम गुण उधरे, पतित पांवन भये परसि सारं।  
भणत रैदास ररंकार गुण गावतां, संत साधू भये सहजि पारं॥3॥

52.

॥ राग सोरठी॥  
पार गया चाहै सब कोई।  
रहि उर वार पार नहीं होई॥ टेक॥  
पार कहैं उर वार सूँ पारा, बिन पद परचौ भ्रमहि गवारा॥1॥  
पार परंम पद मंझि मुरारी, तामैं आप रमैं बनवारी॥2॥  
पूरन ब्रह्म बसै सब ठाड़, कहै रैदास मिले सुख सांई॥3॥

53.

॥ राग सोरठी॥  
बपुरौ सति रैदास कहै।  
ग्यान बिचारि नांइ चित राखै, हरि कै सरनि रहै रे॥ टेक॥  
पाती तोड़ै पूज रचावै, तारण तिरण कहै रे।  
मूरति मांहि बसै परमेसुर, तौ पांणी मांहि तिरै रे॥1॥  
त्रिबिधि संसार कवन बिधि तिरिबौ, जे दिढ नांव न गहै रे।  
नाव छाड़ि जे डूंगै बैठे, तौ दूणां दूख सहै रे॥2॥  
गुरु कौं सबद अरु सुरति कुदाली, खोदत कोई लहै रे।

राम काहू कै बाटै न आयौ, सोनै कूल बहै रे॥3॥  
 झूठी माया जग डहकाया, तो तनि ताप दहै रे।  
 कहै रैदास राम जपि रसनां, माया काहू कै संगि न न रहै रे॥4॥

54.

॥ राग सोरठी॥  
 इहै अंदेसा सोचि जिय मेरे।  
 निस बासुरि गुन गाँऊँ राम तेरे॥ टेक॥  
 तुम्ह च्यंतत मेरी च्यंता हो न जाई, तुम्ह च्यंतामनि होऊ कि नाहीं॥1॥  
 भगति हेत का का नहीं कीन्हा, हमारी बेर भये बल हीनां॥2॥  
 कहै रैदास दास अपराधी, जिहि तुम्ह ढरवौ सो मैं भगति न साधी॥3॥

55.

॥ राग सोरठी॥  
 राम राइ का कहिये यहु ऐसी।  
 जन की जानत हौ जैसी तैसी॥ टेक॥  
 मीन पकरि काट्यौ अरु फाट्यौ, बांटी कीयौ बहु बांतीं।  
 खंड खंड करि भोजन कीन्हीं, तऊ न बिसार्यौ पांती॥1॥  
 तै हम बाँधे मोह पासि मैं, हम तूं प्रेम जेवरिया बांध्यौ।  
 अपने छूटन के जतन करत हौ, हम छूटे तूँ आराध्यौ॥2॥  
 कहै रैदास भगति इक बाढ़ी, अब काकौ डर डरिये।  
 जा डर कौँ हम तुम्ह कौँ सेवै, सु दुख अजहूँ सहिये॥3॥

56.

॥ राग सोरठी॥  
 रे मन माछला संसार समंदे, तू चित्र बिचित्र बिचारि रे।  
 जिहि गालै गिलियाँ ही मरिये, सो संग दूरि निवारि रे॥ टेक॥  
 जम छैडि गणि डोरि छै कंकन, प्र त्रिया गालौ जाणि रे।  
 होइ रस लुबधि रमै यू मूरिख, मन पछितावै न्याणि रे॥1॥  
 पाप गिल्यौ छै धरम निबौली, तू देखि देखि फल चाखि रे।  
 पर त्रिया संग भलौ जे होवै, तौ राणां रावण देखि रे॥2॥

कहै रैदास रतन फल कारणि, गोब्यंद का गुण गाइ रे।  
काचौ कुंभ भयौ जल जैसें, दिन- दिन घटतौ जाइ रे॥3॥

57.

॥ राग सोरठी॥  
रे चित चेति चेति अचेत काहे, बालमीकौ देख रे।  
जाति थैं कोई पदि न पहुच्या, राम भगति बिसेष रे॥ टेक॥  
षट क्रम सहित जु विप्र होते, हरि भगति चित द्रिढ नांहि रे।  
हरि कथा सँ हेत नांहीं, सुपच तुलै तांहि रे॥1॥  
स्वान सत्रु अजाति सब थैं, अंतरि लावै हेत रे।  
लोग वाकी कहा जानै, तीनि लोक पवित रे॥2॥  
अजामिल गज गनिका तारी, काटी कुंजर की पासि रे।  
ऐसे द्रुमती मुकती कीये, क्यँ न तिरै रैदास रे॥3॥

58.

॥ राग सोरठी॥  
रथ कौ चतुर चलावन हारौ।  
खिण हाकै खिण ऊभौ राखै, नहीं आन कौ सारौ॥ टेक॥  
जब रथ रहै सारहीं थाके, तब को रथहि चलावै।  
नाद बिनोद सबै ही थाकै, मन मंगल नहीं गावै॥1॥  
पाँच तत कौ यहु रथ साज्यौ, अरथैं उरध निवासा।  
चरन कवल ल्यौ लाइ रह्यौ है, गुण गावै रैदासा॥2॥

59.

॥ राग सोरठी॥  
जो तुम तोरौ रांम मैं नहीं तोरौं।  
तुम सौं तोरि कवन सँ जोरौं॥ टेक॥  
तीरथ ब्रत का न करौं अंदेसा, तुम्हारे चरन कवल का भरोसा॥1॥  
जहाँ जहाँ जाऊँ तहाँ तुम्हारी पूजा, तुम्ह सा देव अवर नहीं दूजा॥2॥  
मैं हरि प्रीति सबनि सँ तोरी, सब स्यौं तोरि तुम्हैं स्यँ जोरी॥3॥  
सब परहरि मैं तुम्हारी आसा, मन क्रम वचन कहै रैदासा॥4॥



60.

॥ राग सोरठी॥

किहि बिधि अणसरूं रे, अति दुलभ दीनदयाल।  
 मैं महाबिषई अधिक आतुर, कामना की झाल॥ टेक॥  
 कह छंभ बाहरि कीयैं, हरि कनक कसौटी हार।  
 बाहरि भीतरि साखि तू, मैं कीयौ सुसा अंधियार॥1॥  
 कहा भयौ बहु पाखंड कीयैं, हरि हिरदै सुपिनैं न जान।  
 ज्यू दारा बिभचारनीं, मुख पतिव्रता जीय आन॥2॥  
 मैं हिरदै हारि बैठो हरी, मो पैं सयौं न एको काज।  
 भाव भगति रैदास दे, प्रतिपाल करौ मोहि आज॥3॥

61.

॥ राग सोरठी॥

माधवे का कहिये भ्रम ऐसा।  
 तुम कहियत होह न जैसा॥ टेक॥  
 त्रिपति एक सेज सुख सूता, सुपिनैं भया भिखारी।  
 अछित राज बहुत दुख पायौ, सा गति भई हमारी॥1॥  
 जब हम हुते तबैं तुम्ह नाहीं, अब तुम्ह हौ मैं नाहीं।  
 सलिता गवन कीयौ लहरि महोदधि, जल केवल जल मांही॥2॥  
 रजु भुजंग रजनी प्रकासा, अस कछु मरम जनाव।  
 संमंझि परी मोहि कनक अल्यंक्रत ज्यूं, अब कछु कहत न आवा॥3॥  
 करता एक भाव जगि भुगता, सब घट सब बिधि सोई।  
 कहै रैदास भगति एक उपजी, सहजैं होइ स होई॥4॥

62.

॥ राग सोरठी॥

माधौ भ्रम कैसैं न बिलाइ।  
 ताथैं द्वती भाव दरसाइ॥ टेक॥  
 कनक कुंडल सूत्र पट जुदा, रजु भुजंग भ्रम जैसा।  
 जल तरंग पांहन प्रितमां ज्यूं, ब्रह्म जीव द्वती ऐसा॥1॥  
 बिमल ऐक रस, उपजै न बिनसै, उदै अस्त दोई नाहीं।

बिगता बिगति गता गति नांहीं, बसत बसै सब मांहीं॥2॥  
 निहचल निराकार अजीत अनूपम, निरभै गति गोव्यंदा।  
 अगम अगोचर अखिर अतरक, त्रिगुण नित आनंदा॥3॥  
 सदा अतीत ग्यांन ध्यानं बिरिजित, नीरबिकारं अबिनासी।  
 कहै रैदास सहज सूनि सति, जीवन मुकति निधि कासी॥4॥

63.

॥ राग सोरठी॥  
 मन मेरे सोई सरूप बिचार।  
 आदि अंत अनंत परंम पद, संसै सकल निवारं॥ टेक॥  
 जस हरि कहियत तस तौ नहीं, है अस जस कछू तैसा।  
 जानत जानत जानि रह्यौ मन, ताकौ मरम कहौ निज कैसा॥1॥  
 कहियत आन अनुभवत आन, रस मिल्या न बेगर होई।  
 बाहरि भीतरि गुप्त प्रगट, घट घट प्रति और न कोई॥2॥  
 आदि ही येक अंति सो एकै, मधि उपाधि सु कैसे।  
 है सो येक पै भ्रम तैं दूजा, कनक अल्यंकृत जैसे॥3॥  
 कहै रैदास प्रकास परम पद, का जप तप ब्रत पूजा।  
 एक अनेक येक हरि, करौं कवण बिधि दूजा॥4॥

64.

॥ राग सोरठी॥  
 जिनि थोथरा पिछोरे कोई।  
 जो र पिछौरे जिहिं कण होई॥ टेक॥  
 झूठ रे यहु तन झूठी माया, झूठा हरि बिन जन्म गंवाया॥1॥  
 झूठा रे मंदिर भोग बिलासा, कहि समझावै जन रैदासा॥2॥

65.

॥ राग सोरठी॥  
 न बीचारिओ राजा राम को रसु।  
 जिह रस अनरस बीसरि जाही॥ टेक॥  
 दूलभ जनमु पुंन फल पाइओ बिरथा जात अबिबेके।

राजे इन्द्र समसरि ग्रिह आसन बिनु हरि भगति कहहु किह लेखै।।।।  
 जानि अजान भए हम बावर सोच असोच दिवस जाही।  
 इन्द्री सबल निबल बिबेक बुधि परमारथ परवेस नहीं।।2।।  
 कहीअत आन अचरीअत आन कछु समझ न परै अपर माइआ।  
 कहि रविदास उदास दास मति परहरि कोपु करहु जीअ दइआ।।3।।

66.

॥ राग सोरठी॥  
 हरि हरि हरि न जपहि रसना।  
 अवर सम तिआगि बचन रचना॥ टेक॥  
 सुख सागरु सुरतर चिंतामनि कामधेनु बसि जाके।  
 चारि पदारथ असट दसा सिधि नवनिधि करतल ताके।।1।।  
 नाना खिआन पुरान बेद बिधि चउतीस अखर माँही।  
 बिआस बिचारि कहिओ परमारथु राम नाम सरि नाही।।2।।  
 सहज समाधि उपाधि रहत फुनि बडै भागि लिव लागी।  
 कहि रविदास प्रगासु रिदै धरि जनम मरन भै भागी।।3।।

67.

॥ राग सोरठी॥  
 माधवे तुम न तोरहु तउ हम नहीं तोरहि।  
 तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि॥ टेक॥  
 जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा। जउ तुम चंद तउ हम भए है चकोरा।।1।।  
 जउ तुम दीवरा तउ हम बाती। जउ तुम तीरथ तउ हम जाती।।2।।  
 साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी। तुम सिउ जोरि अवर संगि तोरी।।3।।  
 जह जह जाउ तहा तेरी सेवा। तुम सो ठाकुरु अउरु न देवा।।4।।  
 तुमरे भजन कटहि जम फाँसा। भगति हेत गावै रविदासा।।5।।

68.

॥ राग सोरठी॥  
 प्रानी किआ मेरा किआ तेरा।  
 तैसे तरवर पंखि बसेरा॥ टेक॥  
 जल की भीति पवन का थंभा। रकत बुंद का गारा।

हाड़ मास नाड़ी को पिंजरू। पंखी बसै बिचारा॥1॥  
 राखहु कंध उसारहु नीवां। साढ़े तीनि हाथ तेरी सीवां॥2॥  
 बंके बाल पाग सिर डेरी। इहु तनु होइगो भसम की डेरी॥3॥  
 ऊचे मंदर सुंदर नारी। राम नाम बिनु बाजी हारी॥4॥  
 मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी। ओछा जनमु हमारा।  
 तुम सरनागति राजा रामचंद। कहि रविदास चमारा॥5॥

69.

॥ राग सोरठी॥  
 चमरटा गाँठि न जनई।  
 लोग गठावै पनही॥ टेक॥  
 आर नहीं जिह तोपउ। नहीं रांबी ठाउ रोपउ॥1॥  
 लोग गंठि गंठि खरा बिगूचा। हउ बिनु गांठे जाइ पहूचा॥2॥  
 रविदासु जपै राम नाम, मोहि जम सिउ नाही कामा॥3॥

70.

॥ राग सोरठी॥  
 पांडे कैसी पूज रची रे।  
 सति बोलै सोई सतिबादी, झूठी बात बची रे॥ टेक॥  
 जो अबिनासी सबका करता, ब्यापि रह्यौ सब ठौर रे।  
 पंच तत जिनि कीया पसारा, सो यौ ही किधौं और रे॥1॥  
 तू ज कहत है यौ ही करता, या कौं मनिख करै रे।  
 तारण सकति सहीजे यामैं, तौ आपण क्युँ न तिरै रे॥2॥  
 अहीं भरोसै सब जग बूझा, सुणि पंडित की बात रे॥  
 याकै दरसि कौण गुण छूटा, सब जग आया जात रे॥3॥  
 याकी सेव सूल नहीं भाजै, कटै न संसै पास रे।  
 सौचि बिचारि देखिया मूरति, यौं छाड़ौ रैदास रे॥4॥

71.

॥ राग धनाश्री॥  
 तुझा देव कवलापती सरणि आयौ।  
 मंझा जनम संदेह भ्रम छेदि माया॥ टेक॥

अति संसार अपार भौ सागरा, ता मैं जांमण मरण संदेह भारी।  
कांम भ्रम क्रोध भ्रम लोभ भ्रम, मोह भ्रम, अनत भ्रम छेदि मम करसि  
यारी॥१॥

पंच संगी मिलि पीड़ियौ प्राणि यों, जाइ न न सकू बैराग भागा।  
पुत्र बरग कुल बंधु ते भारज्या, भखैं दसौ दिसि रिस काल लागा॥२॥  
भगति च्यंतौ तो मोहि दुख ब्यापै, मोह च्यंतौ तौ तेरी भगति जाई।  
उभै संदेह मोहि रैणि दिन ब्यापै, दीन दाता करौं कौण उपाई॥३॥  
चपल चेत्यौ नहीं बहुत दुख देखियौ, कांम बसि मोहियौ क्रम फंधा।  
सकति सनबंध कीयौ, ग्यान पद हरि लीयौ, हिरदै बिस रूप तजि भयौ  
अंधा॥४॥

परम प्रकास अबिनास अघ मोचनां, निरखि निज रूप बिश्राम पाया।  
बंदत रैदास बैराग पद च्यंतता, जपौ जगदीस गोब्यंद राया॥५॥

72.

॥ राग धनाश्री॥  
मेरी प्रीति गोपाल सँ जिनि घटै हो।  
मैं मोलि महँगी लई तन सटै हो॥ टेक॥  
हिरदै सुमिरन करौं नैन आलोकनां, श्रवनां हरि कथा पूरि राखूँ।  
मन मधुकर करौ, चरणां चित धरौं, राम रसाइन रसना चाखूँ॥१॥  
साध संगति बिनां भाव नहीं उपजै, भाव बिन भगति क्यँ होइ तेरी।  
बंदत रैदास रघुनाथ सुणि बीनती, गुर प्रसादि क्रिया करौ मेरी॥२॥

73.

॥ राग धनाश्री॥  
कौन भगति थें रहै प्यारे पाहुनों रे।  
धरि धरि देखैं मैं अजब अभावनों रे॥ टेक॥  
मैला मैला कपड़ा केताकि धोउं, आवै आवै नींदड़ी कहाँ लौं सोऊँ॥१॥  
ज्यँ ज्यँ जोड़ौं त्यँ त्यँ फाटे, झूठे से बनजि रे उठि गयौ हाटे॥२॥  
कहैं रैदास पर्यौ जब लेखौ, जोई जोई कीयौ रे, सोई सोई देखौ॥३॥

74.

॥ राग धनाश्री॥

जयौ राम गोब्यंद बीटल बासदेव।

हरि बिशन बैक्कुंठ मधुकीटभारी॥

कृश्न केसों रिषीकेस कमलाकंत।

अहो भगवंत त्रिबधि संतापहारी॥ टेक॥

अहो देव संसार तौ गहर गंभीर।

भीतरि भ्रमत दिसि ब दिसि, दिसि कछू न सूझै॥

बिकल ब्याकुल खेंद, प्रणतंत परमहेत।

ग्रसित मति मोहि मारग न सूझै॥

देव इहि औसरि आंन, कौंन संक्या समांन।

देव दीन उधरन, चरंन सरन तेरी॥

नहीं आंन गति बिपति कौं हरन और।

श्रीपति सुनसि सीख संभाल प्रभु करहु मेरी॥१॥

अहो देव कांम केसरि काल, भुजंग भामिनी भाल।

लोभ सूकर क्रोध बर बारनूँ॥२॥

ग्रब गैंडा महा मोह टटनीं, बिकट निकट अहंकार आरनूँ।

जल मनोरथ ऊरमीं, तरल तुसना मकर इन्त्री जीव जंत्रक मांही।

समक ब्याकुल नाथ, सत्य बिष्यादिक पंथ, देव देव विश्राम नांही॥३॥

अहो देव सबै असंगति मेर, मधि फूटा भेरा।

नांव नवका बड़ें भागि पायौ।

बिन गुर करणधार डोलै न लागै तीर।

विषै प्रवाह औ गाह जाई।

देव किहि करौं पुकार, कहाँ जाँऊँ।

कासूँ कहूँ, का करूँ अनुग्रह दास की त्रसहारी।

इति ब्रत मान और अवलंबन नहीं।

तो बिन त्रिबधि नाइक मुरारी॥३॥

अहो देव जेते कयै अचेत, तू सरबगि मैं न जानूँ।

ग्यांन ध्यांन तेरौ, सत्य सतिमिद परपन मन सा मल।

मन क्रम बचन जंमनिका, ग्यान बैराग दिढ़ भगति नाहीं।

मलिन मति रैदास, निखल सेवा अभ्यास।

प्रेम बिन प्रीति सकल ससै न जांहीं॥४॥

75.

॥ राग धनाश्री॥

मैं का जानूं देव मैं का जानू।

मन माया के हाथि बिकांनू॥ टेक॥

चंचल मनवां चहु दिसि धावैय जिभ्या इंद्री हाथि न आवै।

तुम तौ आहि जगत गुर स्वांमीं, हम कहियत कलिजुग के कांमी॥1॥

लोक बेद मेरे सुकृत बढ़ाई, लोक लीक मोपैं तजी न जाई।

इन मिलि मेरौ मन जु बिगार्यौ, दिन दिन हरि जी सूँ अंतर पार्यौ॥2॥

सनक सनंदन महा मुनि ग्यांनी, सुख नारद ब्यास इहै बखानीं।

गावत निगम उमांपति स्वांमीं, सेस सहंस मुख कीरति गांमी॥3॥

जहाँ जहाँ जाऊँ तहाँ दुख की रासी, जौ न पतियाइ साध है साखी।

जमदूतनि बहु बिधि करि मार्यौ, तऊ निलज अजहूँ नहीं हायौ॥4॥

हरि पद बिमुख आस नहीं छूटै, ताथैं त्रिसनां दिन दिन लूटै।

बहु बिधि करम लीयैं भटकावै, तुमहि दोस हरि कौ न लगावै॥5॥

केवल राम नाम नहीं लीया। संतुति विषै स्वादि चित दीया।

कहै रैदास कहाँ लग कहिये, बिन जग नाथ सदा सुख सहियै॥6॥

76.

॥ राग धनाश्री॥

त्रहि त्रहि त्रिभवन पति पावन।

अतिसै सुल सकल बलि जावन॥ टेक॥

कांम क्रोध लंपट मन मोर, कैसैं भजन करौं राम तोर॥1॥

विषम विष्याधि बिहंडनकारी, असरन सरन सरन भौ हारी॥2॥

देव देव दरबार दुवारै, राम राम रैदास पुकारै॥3॥

77.

॥ राग धनाश्री॥

जन कूँ तारि तारि तारि तारि बाप रमइया।

कठन फंध पर्यौ पंच जमइया॥ टेक॥

तुम बिन देव सकल मुनि ढूँढ़े, कहूँ न पायौ जम पासि छुड़इया॥1॥

हमसे दीन, दयाल न तुमसे, चरन सरन रैदास चमइया॥2॥

78.

॥ राग धनाश्री॥

हउ बलि बलि जाउ रमईया कारने।

कारन कवन अबोल॥ टेक॥

हम सरि दीनु दइआलु न तुमसरि। अब पतीआरु किआ कीजै।

बचनी तोर मोर मनु मानै। जन कउ पूरनु दीजै॥१॥

बहुत जनम बिछुरे थे माधउ, इहु जनमु तुम्हरे लेखे।

कहि रविदास अस लागि जीवउ। चिर भइओ दरसनु देखे॥२॥

79.

॥ राग धनाश्री॥

नामु तेरो आरती भजनु मुरारे।

हरि के नाम बिनु झूठे सगल पसारे॥ टेक॥

नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा नामु तेरा केसरो ले छिड़का रे।

नामु तेरा अंमुला नामु तेरो चंदनों, घसि जपे नामु ले तुझहि का उचारे॥१॥

नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे।

नाम तेरे की जोति लगाई भइओं उजिआरो भवन सगला रे॥२॥

नामु तेरो तागा नामु फूल माला, भार अठारह सगल जूठा रे।

तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ नामु तेरा तुही चवर ढोला रे॥३॥

दसअठा अठसठे चारे खाणी इहै वरतणि है सगल संसारे।

कहै रविदासु नाम तेरो आरती सतिनामु है हरि भोग तुहारे॥४॥

80.

॥ राग धनाश्री॥

अहो देव तेरी अमित महिमां, महादेवी माया।

मनुज दनुज बन दहन, कलि विष कलि किरत सबै समय समनं॥

निरबांन पद भुवन, नांम बिघनोघ पवन पात॥ टेक॥

गरग उत्तम बांमदेव, विस्वामित्र ब्यास जमदग्नि श्रिंगी ऋषि दुर्बासा।

मारकंडेय बालमीक श्रिगु अंगिरा, कपिल बगदालिम सुकमातंम न्यासा॥१॥

अत्रिय अष्टाब्रक गुर गंजानन, अगस्ति पुलस्ति पारासुर सिव विधाता॥



रिष जड़ भरथ सरु भरिष, चिवनि बसिष्टि जिह्वनि ज्यागबलिक तव  
ध्यानि राता॥2॥

धू अंबरीक प्रहलाद नारद, बिदुर द्रोवणि अक्रूर पांडव सुदांमां।  
भीषम उधव बभीषन चंद्रहास, बलि कलि भक्ति जुक्ति जयदेव नांमां॥3॥  
गरुड़ हनूमांनु मांन जनकात्मजा, जय बिजय द्रोपदी गिरि सुता श्री प्रचेता।  
रुकमांगद अंगद बसदेव देवकी, अवर अमिनत भक्त कहूँ केता॥4॥  
हे देव सेष सनकादि श्रुति भागवत, भारती स्तवत अनिवरत गुणर्दुबगेवं।  
अकल अबिछन व्यापक ब्रह्ममेक रस सुध चौतनि पूरन मनेवं॥5॥  
सरगुण निरगुण निरामय निरबिकार, हरि अज निरंजन बिमल अप्रमेवं।  
प्रमात्मां प्रकृति पर प्रमुचित, सचिदानंद गुर ग्यांन मेवं॥6॥  
हे देव पवन पावक अवनि, जलधि जलधर तरनि।  
काल जाम मृति ग्रह व्याध्य बाधा, गज भुजंग भुवपाल।  
ससि सक्र दिगपाल, आग्या अनुगत न मुचत मृजादा॥7॥  
अभय बर ब्रिद प्रतंग्या सति संकल्प, हरि दुष्ट तारंन चरंन सरंन तेरै।  
दास रैदास यह काल व्याकुल, त्रहि त्रहि अवर अवलंबन नहीं मेरै॥8॥

81.

॥ राग विलावल॥  
क्या तू सोवै जणिं दिवांनां।  
झूठा जीवनां सच करि जानां॥ टेक॥  
जिनि जीव दिया सो रिजकअ बड़ावै, घट घट भीतरि रहट चलावै।  
करि बंदिगी छाडि मैं मेरा, हिरदै का रांम संभालि सवेरा॥1॥  
जो दिन आवै सौ दुख मैं जाई, कीजै कूच रह्यां सच नाहीं।  
संग चल्या है हम भी चलनां, दूरि गवन सिर ऊपरि मरनां॥2॥  
जो कुछ बोया लुनियें सोई, ता मैं फेर फार कछू न होई।  
छाडेअं कूर भजै हरि चरनां, ताका मिटै जनम अरु मरनां॥3॥  
आगैं पंथ खरा है झीनां, खाडै धार जिसा है पैनां।  
तिस ऊपरि मारग है तेरा, पंथी पंथ संवारि सवेरा॥4॥  
क्या तैं खरच्या क्या तैं खाया, चल दरहाल दीवानि बुलाया।  
साहिब तोपैं लेखा लेसी, भीड़ पड़े तू भरि भरिदेसी॥5॥

जनम सिरांनां कीया पसारा, सांझ पड़ी चहु दिसि अधियारा।  
कहै रैदासा अग्यांन दिवांनां, अजहूँ न चेतै दुनी फंध खांनां॥6॥

82.

॥ राग विलावल॥  
खाँलिक सकिसता मैं तेरा।  
दे दीदार उमेदगार बेकरार जीव मेरा॥ टेक॥  
अवलि आख्यर इलल आदंम, मौज फरेस्ता बंदा।  
जिसकी पनह पीर पैकंबर, मैं गरीब क्या गंदा॥1॥  
तू हानिरां हजूर जोग एक, अवर नहीं दूजा।  
जिसकै इसक आसिरा नांहीं, क्या निवाज क्या पूजा॥2॥  
नाली दोज हनोज बेबखत, कमि खिजमतिगार तुम्हारा।  
दरमादा दरि ज्वाब न पावै, कहै रैदास बिचारा॥3॥

83.

॥ राग विलावल॥  
जो मोहि बेदन का सजि आखूँ।  
हरि बिन जीव न रहै कैसेँ करि राखूँ॥ टेक॥  
जीव तरसै इक दंग बसेरा, करहु संभाल न सुरि जन मोरा।  
बिरह तपै तनि अधिक जरावै, नींदड़ी न आवै भोजन नहीं भावै॥1॥  
सखी सहेली ग्रब गहेली, पीव की बात न सुनहु सहेली।  
मैं रे दुहागनि अधिक रंजानी, गया सजोबन साध न मांनीं॥2॥  
तू दांनां सांइँ साहिब मेरा, खिजमतिगार बंदा मैं तेरा।  
कहै रैदास अंदेसा एही, बिन दरसन क्यूँ जीवैँ हो सनेही॥3॥

84.

॥ राग विलावल॥  
ताथैँ पतित नहीं को अपांवन। हरि तजि आंनहि ध्यावै रे।  
हम अपूजि पूजि भये हरि थैँ, नांडं अनूपम गावै रे॥ टेक॥  
अष्टादस ब्याकरन बखानै, तीनि काल षट जीता रे।  
प्रेम भगति अंतरगति नांहीं, ताथैँ धानुक नीका रे॥1॥

तार्थें भलौ स्वानं कौ सत्रु, हरि चरनां चित लावै रे।  
 मूवां मुकति बैकुंठा बासा, जीवत इहाँ जस पावै रे।2॥  
 हम अपराधी नीच घरि जनमे, कुटंब लोग करैं हासी रे।  
 कहै रैदास नाम जपि रसनीं, काटै जंम की पासी रे।3॥

85.

॥ राग विलावल॥  
 तू जानत मैं किछु नहीं भव खंडन राम।  
 सगल जीअ सरनागति प्रभ पूरन काम॥ टेक॥  
 दारिदु देखि सभ को हसै ऐसी दसा हमारी।  
 असटदसा सिधि कर तलै सभ क्रिया तुमारी॥1॥  
 जो तेरी सरनागता तिन नाही भारू।  
 ऊँच नीच तुमते तरे आलजु संसारू॥2॥  
 कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करी जै।  
 जैसा तू तैसा तुही किआ उपमा दीजै॥3॥

86.

॥ राग विलावल॥  
 जिह कुल साधु बैसनो होइ।  
 बरन अबरन रंकु नहीं ईसरू बिमल बासु जानी ऐ जगि सोइ॥ टेक॥  
 ब्रहमन बैस सूद अरु ख्यत्री डोम चंडार मलेछ मन सोइ।  
 होइ पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारे कुल दोइ॥1॥  
 धनि सु गाउ धनि सो ठाउ धनि पुनीत कुटंब सभ लोइ।  
 जिनि पीआ सार रसु तजे आन रस होइ रस मगन डारे बिखु खोइ॥2॥  
 पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरि अउरु न कोइ।  
 जैसे पुरैन पात रहै जल समीप भनि रविदास जनमें जगि ओइ॥3॥

87.

॥ राग विलावल॥  
 गोबिंदे तुम्हारे से समाधि लागी।  
 उर भुअंग भस्म अंग संतत बैरागी॥ टेक॥

जाके तीन नैन अमृत बैन, सीसा जटाधारी, कोटि कलप ध्यान अलप,  
मदन अंतकारी॥1॥

जाके लील बरन अकल ब्रह्म, गले रुण्डमाला, प्रेम मगन फिरता नगन, संग  
सखा बाला॥2॥

अस महेश बिकट भेस, अजहूँ दरस आसा, कैसे राम मिलीं तोहि, गावै  
रैदासा॥3॥

88.

॥ राग विलावल॥

नहीं बिश्राम लहूँ धरनींधर।

जाकै सुर नर संत सरन अभिअंतर॥ टेक॥

जहाँ जहाँ गयौ, तहाँ जनम काछै, तृबिधि ताप तृ भुवनपति पाछै॥1॥

भये अति छीन खेद माया बस, जस तिन ताप पर नगरि हतै तस॥2॥

द्वारैं न दसा बिकट बिष कारन, भूलि पर्यौ मन या बिष्या बन॥3॥

कहै रैदास सुमिरौ बड़ राजा, काटि दिये जन साहिब लाजा॥4॥

89.

॥ राग भैरूँ (भैरव)॥

भेष लियो पै भेद न जान्यो।

अमृत लेई विषै सो मान्यो॥ टेक॥

काम क्रोध में जनम गँवायो, साधु संगति मिलि राम न गायो॥1॥

तिलक दियो पै तपनि न जाई, माला पहिरे घनेरी लाई॥2॥

कह रैदास परम जो पाऊँ, देव निरंजन सत कर ध्याऊँ॥3॥

90.

॥ राग भैरूँ॥

ऐसा ध्यान धरूँ बनवारी।

मन पवन दिढ सुषमन नारी॥ टेक॥

सो जप जपूँ जु बहुरि न जपनां, सो तप तपूँ जु बहुरि न तपनां।

सो गुर करौं जु बहुरि न करनां, ऐसे मरूँ जैसे बहुरि न मरनां॥1॥

उलटी गंग जमुन मैं ल्याऊँ, बिन हीं जल संजम कै आऊँ।

लोचन भरि भरि ब्यं व निहारूँ, जोति बिचारि न और बिचारूँ॥2॥  
 प्यंड परै जीव जिस घरि जाता, सबद अतीत अनाहद राता।  
 जा परि कृपा सोई भल जानै, गूंगो सा कर कहा बखानै॥3॥  
 सुनि मंडल मैं मेरा बासा, ताथैं जीव मैं रहूँ उदासा।  
 कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस धरि जाऊँ (जब) बहुरि न आऊँ॥4॥

91.

॥ राग भैरूँ॥

अबिगत नाथ निरंजन देवा।  
 मैं का जानूं तुम्हारी सेवा॥ टेक॥  
 बांधू न बंधन छाऊँ न छाया, तुमहीं सेऊँ निरंजन राया॥1॥  
 चरन पताल सीस असमाना, सो ठाकुर कैसैं संपटि समाना॥2॥  
 सिव सनिकादिक अंत न पाया, खोजत ब्रह्मा जनम गवाया॥3॥  
 तोड़ूँ न पाती पूजौं न देवा, सहज समाधि करौं हरि सेवा॥4॥  
 नख प्रसेद जाकै सुरसुरी धारा, रोमावली अठारह भारा॥5॥  
 चारि बेद जाकै सुमृत सासा, भगति हेत गावै रैदासा॥6॥

92.

॥ राग टोड़ी॥

पांवन जस माधो तोरा।  
 तुम्ह दारन अध मोचन मोरा॥ टेक॥  
 कीरति तेरी पाप बिनासै, लोक बेद यूँ गावै।  
 जो हम पाप करत नहीं भूधर, तौ तू कहा नसावै॥1॥  
 जब लग अंग पंक नहीं परसै, तौ जल कहा पखालै।  
 मन मलन बिषिया रंस लंपट, तौ हरि नांड संभालै॥2॥  
 जौ हम बिमल हिरदै चित अंतरि, दोस कवन परि धरि है।  
 कहै रैदास प्रभु तुम्ह दयाल हौ, अबंध मुकति कब करि हौ॥3॥

93.

॥ राग गुंडा॥

आज नां द्यौस नां ल्यौ बलिहारा।

मेरे ग्रिह आया राजा राम जी का प्यारा॥ टेक॥

आंगण बठाड़ भवन भयौ पावन, हरिजन बैठे हरि जस गावन॥१॥

करूँ डंडौत चरन पखालूँ, तन मन धन उन ऊपरि वारौं॥२॥

कथा कहै अरु अरथ बिचारै, आपन तिरैं और कूँ तारैं॥३॥

कहै रैदास मिले निज दास, जनम-जनम के कटे पास॥४॥

94.

॥ राग जैतश्री॥

सब कछु करत न कहु कछु कैसैं।

गुन बिधि बहुत रहत ससि जैसैं॥ टेक॥

द्रपन गगन अनील अलेप जस, गंध जलध प्रतिब्यंबं देखि तस॥१॥

सब आरंभ अकांम अनेहा, विधि नषेध कीयौ अनकेहा॥२॥

इहि पद कहत सुनत नहीं आवै, कहै रैदास सुकृत को पावै॥३॥

95.

॥ राग सारंग॥

जग मैं बेद बैद मांजी जें।

इनमें और अंगद कछु औरै, कहौ कवन परिकीजै॥ टेक॥

भौ जल ब्याधि असाधिअ प्रबल अति, परम पंथ न गही जै।

पढ़ैं गुनैं कछु समझि न परई, अनभै पद न लही जै॥१॥

चखि बिहूँन कतार चलत हैं, तिनहूँ अंस भुज दीजै।

कहै रैदास बमेक तत बिन, सब मिलि नरक परी जै॥२॥

96.

॥ राग कानड़ा॥

चलि मन हरि चटसाल पढ़ाऊँ॥ टेक॥

गुरु की साटि ग्यान का अखिर, बिसरै तौ सहज समाधि लगाऊँ॥१॥

प्रेम की पाटी सुरति की लेखनी करिहूँ, रसौ ममौ लिखि आंक दिखाऊँ॥२॥

इहिं बिधि मुक्ति भये सनकादिक, रिदौ बिदारि प्रकास दिखाऊँ॥3॥  
 कागद कैवल मति मसि करि नृमल, बिन रसना निसदिन गुण गाऊँ॥4॥  
 कहै रैदास राम जपि भाई, संत साखि दे बहुरि न आऊँ॥5॥

97.

॥ राग कानड़ा॥  
 माया मोहिला कान्ह।  
 मैं जन सेवग तोरा॥ टेक॥  
 संसार परपंच मैं ब्याकुल परमानंदा।  
 त्रहि त्रहि अनाथ नाथ गोब्यंदा॥१॥  
 रैदास बिनवैं कर जोरी।  
 अबिगत नाथ कवन गति मोरी॥2॥

98.

॥ राग केदारौ॥  
 कहि मन राम नाम संभारि।  
 माया कै भ्रमि कहा भूलौ, जाहिगौ कर झारि॥ टेक॥  
 देख धूँ इहाँ कौन तेरौ, सगा सुत नहीं नारि।  
 तोरि तंग सब दूरि करि हैं, दैहिंगे तन जारि॥१॥  
 प्रान गयैं कहु कौन तेरौ, देख सोचि बिचारि।  
 बहुरि इहि कल काल मांही, जीति भावै हारि॥2॥  
 यहु माया सब थोथरी, भगति दिसि प्रतिपारि।  
 कहि रैदास सत बचन गुर के, सो जीय थैं न बिसारि॥3॥

99.

॥ राग केदारौ॥  
 हरि को टाँडौ लादे जाइ रे।  
 मैं बनिजारौ राम कौ॥  
 राम नाम धन पायौ, ताथैं सहजि करौं ब्यौपार रे॥ टेक॥  
 औघट घाट घनो घनां रे, त्रिगुण बैल हमार।  
 राम नाम हम लादियौ, ताथैं विष लाद्यौ संसार रे॥१॥

अनतहि धरती धन धर्यौ रे, अनतहि ढूँढन जाइ।  
 अनत कौ धर्यौ न पाइयैं, ताथैं चाल्यौ मूल गँवाइ रे॥2॥  
 रैनि गँवाई सोइ करि, द्यौस गँवायो खाइ।  
 हीरा यहु तन पाइ करि, कौड़ी बदलै जाइ रे॥3॥  
 साध संगति पूँजी भई रे, बस्त लई त्रिमोल।  
 सहजि बलदवा लादि करि, चहुँ दिसि टाँडो मेल रे॥4॥  
 जैसा रंग कसूँभं का रे, तैसा यहु संसार।  
 रमइया रंग मजीठ का, ताथैं भणै रैदास बिचार रे॥5॥

100.

॥ राग केदारा॥  
 प्रीति सधारन आव।  
 तेज सरूपी सकल सिरोमनि, अकल निरंजन राव॥ टेक॥  
 पीव संगि प्रेम कबहूँ नहीं पायौ, कारनि कौण बिसारी।  
 चक को ध्यान दधिसुत कौं होत है, त्यूँ तुम्ह थें मैं न्यारी॥1॥  
 भोर भयौ मोहिं इकटग जोवत, तलपत रजनी जाइ।  
 पिय बिन सेज क्यूँ सुख सोऊँ, बिरह बिथा तनि माइ॥2॥  
 दुहागनि सुहागनि कीजै, अपनै अंग लगाई।  
 कहै रैदास प्रभु तुम्हरै बिछोहै, येक पल जुग भरि जाइ॥3॥

101.

॥ राग केदारा॥  
 दरसन दीजै राम दरसन दीजै।  
 दरसन दीजै हो बिलंब न कीजै॥ टेक॥  
 दरसन तोरा जीवनि मोरा, बिन दरसन का जीवै हो चकोरा॥1॥  
 माधौ सतगुर सब जग चेला, इब कै बिछुरै मिलन दुहेला॥2॥  
 तन धन जोबन झूठी आसा, सति सति भाखै जन रैदासा॥3॥

102.

॥ राग सूही॥  
 सो कत जानै पीर पराई।  
 जाकै अंतरि दरदु न पाई॥ टेक॥



सह की सार सुहागनी जानै। तजि अभिमानु सुख रलीआ मानै।  
 तनु मनु देइ न अंतरु राखै। अवरा देखि न सुनै अभाखै॥1॥  
 दुखी दुहागनि दुइ पख हीनी। जिनि नाह निरंतहि भगति न कीनी।  
 पुरसलात का पंथु दुहेला। संग न साथी गवनु इकेला॥2॥  
 दुखीआ दरदवंदु दरि आइआ। बहुतु पिआस जबाबु न पाइआ।  
 कहि रविदास सरनि प्रभु तेरी। जिय जानहु तिउ करु गति मेरी॥3॥

103.

॥ राग सूही॥  
 इहि तनु ऐसा जैसे घास की टाटी।  
 जलि गइओ घासु रलि गइओ माटी॥ टेक॥  
 ऊँचे मंदर साल रसोई। एक घरी फुनी रहनु न होई॥1॥  
 भाई बंध कुटंब सहेरा। ओइ भी लागे काढु सवेरा॥2॥  
 घर की नारि उरहि तन लागी। उह तउ भूतु करि भागी॥3॥  
 कहि रविदास सभै जग लूटिआ। हम तउ एक राम कहि छूटिआ॥4॥

104.

॥ राग मारू॥  
 ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै।  
 गरीब निवाजु गुसईआ मेरा माथै छत्रु धरै॥ टेक॥  
 जाकी छोति जगत कउ लागै ता पर तु हीं ढरै।  
 नीचह ऊँच करै मेरा गोबिंदु काहू ते न डरै॥1॥  
 नामदेव कबीर तिलोचनु सधना सैनु तरै।  
 कहि रविदासु सुनहु रे संतहि हरि जीउ ते सभै सरै॥2॥

105.

॥ राग मारू॥  
 हरि हरि हरि न जपसि रसना।  
 अवर सभ छाड़ि बचन रचना॥ टेक॥  
 सुध सागर सुरितरु चिंतामनि कामधैन बसि जाके रे।  
 चारि पदारथ असट महा सिधि नव निधि करतल ताकै॥1॥  
 नाना खिआन पुरान बेद बिधि चउतीस अछर माही।

बिआस बीचारि कहिओ परमारथु राम नाम सरि नाही॥2॥  
 सहज समाधि उपाधि रहत होइ उड़े भागि लिव लागी।  
 कहि रविदास उदास दास मतिज जनम मरन भै भागी॥3॥

106.

॥ राग बसंत॥  
 तू कांइ गरबहि बावली।  
 जैसे भादउ खूब राजु तू तिस ते खरी उतावली॥ टेक॥  
 तुझहि सुझंता कछू नाहि। पहिरावा देखे ऊभि जाहि।  
 गरबवती का नाही ठाउ। तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ॥1॥  
 जैसे कुरंक नहीं पाइओ भेदु। तनि सुगंध दूहै प्रदेसु।  
 अप तन का जो करे बीचारू। तिसु नहीं जम कंकरू करे खुआरू॥2॥  
 पुत्र कलत्र का करहि अहंकारू। ठाकुर लेखा मगनहारू।  
 फेड़े का दुखु सहै जीउ। पाछे किसहि पुकारहि पीउ-पीउ॥3॥  
 साधू की जउ लेहि ओट। तेरे मिटहि पाप सभ कोटि-कोटि।  
 कहि रविदास जो जपै नामु। तिस जातु न जनमु न जोनि कामु॥4॥

107.

॥ राग मल्हार॥  
 हरि जपत तेऊ जना पदम कवलास पति तास समतुलि नहीं आन कोऊ।  
 एक ही एक अनेक होइ बिसथरिओ आन रे आन भरपूरि सोऊ॥ टेक॥  
 जा कै भागवतु लेखी ऐ अवरु नहीं पेखीऐ तास की जाति आछोप छीपा।  
 बिआस महि लेखी ऐ सनक महि पेखी ऐ नाम की नामना सपत दीपा॥1॥  
 जा कै ईदि बकरीदि कुल गरु रे वधु करहि मानी अहि सेख सहीद पीरा।  
 जा कै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहू रे लोक परसिध कबीरा॥2॥  
 जा के कुटंब के ढेढ सभ ढोर ढोवंत फिरहि अजहु बनारसी आस पासा।  
 आचार सहित विप्र करहि डंडउति तिन तनै रविदास दासानुदासा॥3॥

108.

॥ राग मल्हार॥  
 मिलत पिआरों प्रान नाथु कवन भगति ते।  
 साध संगति पाइ परम गते॥ टेक॥

मैले कपरे कहा लउ धोवउ, आवैगी नीद कहा लगु सोवउ॥1॥  
 जोई जोई जोरिओ सोई-सोई फाटिओ।  
 झूठै बनजि उठि ही गई हाटिओ॥2॥  
 कहु रविदास भइयो जब लेखो।  
 जोई जोई कीनो सोई-सोई देखिओ॥3॥

109.

॥ राग गौड़॥  
 ऐसे जानि जपो रे जीव।  
 जपि ल्यो राम न भरमो जीव॥ टेक॥  
 गनिका थी किस करमा जोग, परपूरुष सो रमती भोग॥1॥  
 निसि बासर दुस्करम कमाई, राम कहत बैकुंठ जाई॥2॥  
 नामदेव कहिए जाति कै ओछ, जाको जस गावै लोक॥3॥  
 भगति हेत भगता के चले, अंकमाल ले बीठल मिले॥4॥  
 कोटि जग्य जो कोई करै, राम नाम सम तउ न निस्तरै॥5॥  
 निरगुन का गुन देखो आई, देही सहित कबीर सिधाई॥6॥  
 मोर कुचिल जाति कुचिल में बास, भगति हेतु हरिचरन निवास॥7॥  
 चारिउ बेद किया खंडौति, जन रैदास करै डंडौति॥8॥

### संत रविदास से संबंधित तथ्य

जन्म- 1377 एडी में (अर्थात् विक्रम संवत्-माघ सुदी 15, 1433, हालाँकि कुछ लोगों का मानना है कि ये 1440 एडी था) सीर गोवर्धनपुर, वाराणसी, यूपी।

पिता- श्री संतोक दास जी  
 माता- श्रीमती कालसा देवी जी  
 दादा- श्री कालूराम जी  
 दादी- श्रीमती लखपती जी  
 पत्नी- श्रीमती लोनाजी  
 पुत्र- विजय दास जी  
 मृत्यु- वाराणसी में 1540 एडी में।

## रविदास की जीवनी

### आरंभिक जीवन

संत रविदास का जन्म भारत के यूपी के वाराणसी शहर में माता कालसा देवी और बाबा संतोख दास जी के घर 15 वीं शताब्दी में हुआ था। हालाँकि, उनके जन्म की तारीख को लेकर विवाद भी है क्योंकि कुछ का मानना है कि ये 1376, 1377 और कुछ का कहना है कि ये 1399 ई. में हुआ था। कुछ अध्येता के आँकड़ों के अनुसार ऐसा अनुमान लगाया गया था कि रविदास का पूरा जीवन काल 15वीं से 16वीं शताब्दी ई. में 1450 से 1520 के बीच तक रहा।

रविदास के पिता मल साम्राज्य के राजा नगर के सरपंच थे और खुद जूतों का व्यापार और उसकी मरम्मत का कार्य करते थे। अपने बचपन से ही रविदास बेहद बहादुर और ईश्वर के बहुत बड़े भक्त थे लेकिन बाद में उन्हें उच्च जाति के द्वारा उत्पन्न भेदभाव की वजह से बहुत संघर्ष करना पड़ा जिसका उन्होंने सामना किया और अपने लेखन के द्वारा रविदास ने लोगों को जीवन के इस तथ्य से अवगत करवाया। उन्होंने हमेशा लोगों को सिखाया कि अपने पड़ोसियों को बिना भेद-भेदभाव के प्यार करो।

पूरी दुनिया में भाईचारा और शांति की स्थापना के साथ ही उनके अनुयायीयों को दी गयी महान शिक्षा को याद करने के लिये भी संत रविदास का जन्म दिवस का मनाया जाता है। अपने अध्यापन के आरंभिक दिनों में काशी में रहने वाले रुढ़ीवादी ब्राह्मणों के द्वारा उनकी प्रसिद्धि को हमेशा रोका जाता था क्योंकि संत रविदास अस्पृश्यता के भी गुरु थे। सामाजिक व्यवस्था को खराब करने के लिये राजा के सामने लोगों द्वारा उनकी शिकायत की गयी थी। रविदास को भगवान के बारे में बात करने से, साथ ही उनका अनुसरण करने वाले लोगों को अध्यापन और सलाह देने के लिये भी प्रतिबंधित किया गया था।

### रविदास की प्रारंभिक शिक्षा

बचपन में संत रविदास अपने गुरु पंडित शारदा नंद के पाठशाला गये जिनको बाद में कुछ उच्च जाति के लोगों द्वारा रोका किया गया था, वहाँ दाखिला लेने से। हालाँकि पंडित शारदा ने यह महसूस किया कि रविदास कोई सामान्य बालक न होकर एक ईश्वर के द्वारा भेजी गयी संतान है, अतः पंडित

शारदानंद ने रविदास को अपनी पाठशाला में दाखिला दिया और उनकी शिक्षा की शुरुआत हुयी। वो बहुत ही तेज और होनहार थे और अपने गुरु के सिखाने से ज्यादा प्राप्त करते थे। पंडित शारदा नंद उनसे और उनके व्यवहार से बहुत प्रभावित रहते थे उनका विचार था कि एक दिन रविदास आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध और महान सामाजिक सुधारक के रूप में जाने जायेंगे।

पाठशाला में पढ़ने के दौरान रविदास पंडित शारदानंद के पुत्र के मित्र बन गये। एक दिन दोनों लोग एक साथ लुका-छिपी खेल रहे थे, पहली बार रविदास जी जीते और दूसरी बार उनके मित्र की जीत हुयी। अगली बार, रविदास जी की बारी थी लेकिन अंधेरा होने की वजह से वो लोग खेल को पूरा नहीं कर सके उसके बाद दोनों ने खेल को अगले दिन सुबह जारी रखने का फैसला किया। अगली सुबह रविदास जी तो आये लेकिन उनके मित्र नहीं आये। वो लंबे समय तक इंतजार करने के बाद अपने उसी मित्र के घर गये और देखा कि उनके मित्र के माता-पिता और पड़ोसी रो रहे थे।

उन्होंने उन्हीं में से एक से इसका कारण पूछा और अपने मित्र की मौत की खबर सुनकर हक्का-बक्का रह गये। उसके बाद उनके गुरु ने संत रविदास को अपने बेटे के लाश के स्थान पर पहुँचाया, वहाँ पहुँचने पर रविदास ने अपने मित्र से कहा कि उठो ये सोने का समय नहीं है दोस्त, ये तो लुका-छिपी खेलने का समय है। जैसे कि जन्म से ही गुरु रविदास दैवीय शक्तियों से समृद्ध थे, रविदास के ये शब्द सुनते ही उनके मित्र फिर से जी उठे। इस आश्चर्यजनक पल को देखने के बाद उनके माता-पिता और पड़ोसी चकित रह गये।

### वैवाहिक जीवन

भगवान के प्रति उनके प्यार और भक्ति की वजह से वो अपने पेशेवर पारिवारिक व्यवसाय से नहीं जुड़ पा रहे थे और ये उनके माता-पिता की चिंता का बड़ा कारण था। अपने पारिवारिक व्यवसाय से जुड़ने के लिये इनके माता-पिता ने इनका विवाह काफी कम उम्र में ही श्रीमती लोना देवी से कर दिया जिसके बाद रविदास को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुयी जिसका नाम विजयदास पड़ा।

शादी के बाद भी संत रविदास सांसारिक मोह की वजह से पूरी तरह से अपने पारिवारिक व्यवसाय के ऊपर ध्यान नहीं दे पा रहे थे। उनके इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर उनके पिता ने सांसारिक जीवन को निभाने के लिये बिना किसी

मदद के उनको खुद से और पारिवारिक संपत्ति से अलग कर दिया। इस घटना के बाद रविदास अपने ही घर के पीछे रहने लगे और पूरी तरह से अपनी सामाजिक मामलों से जुड़ गये।

### बाद का जीवन

बाद में रविदास जी भगवान राम के विभिन्न स्वरूप राम, रघुनाथ, राजा राम चन्द्र, कृष्णा, गोविन्द आदि के नामों का इस्तेमाल अपनी भावनाओं को उजागर करने के लिये करने लगे और उनके महान अनुयायी बन गये।

### बेगमपुरा शहर से उनके संबंध

बिना किसी दुःख के शांति और इंसानियत के साथ एक शहर के रूप में गुरु रविदास जी द्वारा बेगमपुरा शहर को बसाया गया। अपनी कविताओं को लिखने के दौरान रविदास जी द्वारा बेगमपुरा शहर को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया था जहाँ पर उन्होंने बताया कि एक ऐसा शहर जो बिना किसी दुःख, दर्द या डर के और एक जमीन है जहाँ सभी लोग बिना किसी भेदभाव, गराबी और जाति अपमान के रहते हैं। एक ऐसी जगह जहाँ कोई शुल्क नहीं देता, कोई भय, चिंता या प्रताड़ना नहीं हो।

### मीरा बाई से उनका जुड़ाव

संत रविदास जी को मीरा बाई के आध्यात्मिक गुरु के रूप में माना जाता है, जो कि राजस्थान के राजा की पुत्री और चित्तौड़ की रानी थी। वो संत रविदास के अध्यापन से बेहद प्रभावित थी और उनकी बहुत बड़ी अनुयायी बनी। अपने गुरु के सम्मान में मीरा बाई ने कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं—

“गुरु मिलीया रविदास जी—”।

वो अपने माता-पिता की एक मात्र संतान थी जो बाद में चित्तौड़ की रानी बनी। मीरा बाई ने बचपन में ही अपनी माँ को खो दिया जिसके बाद वो अपने दादा जी के संरक्षण में आ गयी जो कि रविदास जी के अनुयायी थे। वो अपने दादा जी के साथ कई बार गुरु रविदास से मिली और उनसे काफी प्रभावित हुयी। अपने विवाह के बाद, उन्हें और उनके पति को गुरु जी से आशीर्वाद प्राप्त हुआ। बाद में मीराबाई ने अपने पति और ससुराल पक्ष के लोगों की सहमति से गुरु जी को अपने वास्तविक गुरु के रूप में स्वीकार किया। इसके बाद उन्होंने

गुरु जी के सभी धर्मों के उपदेशों को सुनना शुरू कर दिया जिसने उनके ऊपर गहरा प्रभाव छोड़ा और वो प्रभु भक्ति की ओर आकर्षित हो गयी। कृष्ण प्रेम में डूबी मीराबाई भक्ति गीत गाने लगी और दैवीय शक्ति का गुणगान करने लगी।

अपने गीतों में वो कुछ इस तरह कहती थी/-

“गुरु मिलीया रविदास जी दीनी ज्ञान की गुटकी,  
चोट लगी निजनाम हरी की महारे हिवरे खटकी”।

दिनों-दिन वो ध्यान की ओर आकर्षित हो रही थी और वो अब संतों के साथ रहने लगी थी। उनके पति की मृत्यु के बाद उनके देवर और ससुराल के लोग उन्हें देखने आये लेकिन वो उन लोगों के सामने बिल्कुल भी व्यग्र और नरम नहीं पड़ी। बल्कि उन्हें तो आधी रात को उन लोगों के द्वारा गंधीरी नदी में फेंक दिया गया था लेकिन गुरु रविदास जी के आशीर्वाद से वो बच गयी।

एक बार अपने देवर के द्वारा दिये गये जहरीले दूध को गुरु जी द्वारा अमृत मान कर पी गयी और खुद को धन्य समझा। उन्होंने कहा कि।

“विष को प्याला राना जी मिलाय द्यो  
मेरथानी ने पाये  
कर चरणामित् पी गयी रे,  
गुण गोविन्द गाये”।

### संत रविदास के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

एक बार गुरु जी के कुछ विद्यार्थी और अनुयायी ने पवित्र नदी गंगा में स्नान के लिये पूछा तो उन्होंने ये कह कर मना किया कि उन्होंने पहले से ही अपने एक ग्राहक को जूता देने का वादा कर दिया है तो अब वही उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी है। रविदास जी के एक विद्यार्थी ने उनसे दुबारा निवेदन किया तब उन्होंने कहा उनका मानना है कि “मन चंगा तो कठौती में गंगा” मतलब शरीर को आत्मा से पवित्र होने की जरूरत है ना कि किसी पवित्र नदी में नहाने से, अगर हमारी आत्मा और हृदय शुद्ध है तो हम पूरी तरह से पवित्र है चाहे हम घर में ही क्यों न नहाये।

एक बार उन्होंने अपने एक ब्राह्मण मित्र की रक्षा एक भूखे शेर से की थी जिसके बाद वो दोनों गहरे साथी बन गये। हालाँकि दूसरे ब्राह्मण लोग इस दोस्ती से जलते थे सो उन्होंने इस बात की शिकायत राजा से कर दी। रविदास जी के उस ब्राह्मण मित्र को राजा ने अपने दरबार में बुलाया और भूखे शेर द्वारा

मार डालने का हुक्म दिया। शेर जल्दी से उस ब्राह्मण लड़के को मारने के लिये आया लेकिन गुरु रविदास को उस लड़के को बचाने के लिये खड़े देख शेर थोड़ा शांत हुआ। शेर वहाँ से चला गया और गुरु रविदास अपने मित्र को अपने घर ले गये। इस बात से राजा और ब्राह्मण लोग बेहद शर्मिदा हुये और वो सभी गुरु रविदास के अनुयायी बन गये।

### **सामाजिक मुद्दों में गुरु रविदास की सहभागिता**

वास्तविक धर्म को बचाने के लिये रविदास जी को ईश्वर द्वारा धरती पर भेजा गया था क्योंकि उस समय सामाजिक और धार्मिक स्वरूप बेहद दुःखद था। क्योंकि इंसानों द्वारा ही इंसानों के लिये ही रंग, जाति, धर्म तथा सामाजिक मान्यताओं का भेदभाव किया जा चुका था। वो बहुत ही बहादुरी के साथ सभी भेदभाव को स्वीकार करते और लोगों को वास्तविक मान्यताओं और जाति के बारे में बताते। वो लोगों को सिखाते कि कोई भी अपने जाति या धर्म के लिये नहीं जाना जाता, इंसान अपने कर्म से पहचाना जाता है। गुरु रविदास जी समाज में अस्पृश्यता के खिलाफ भी लड़े जो उच्च जाति द्वारा निम्न जाति के लोगों के साथ किया जाता था।

उनके समय में निम्न जाति के लोगों की उपेक्षा होती थी, वो समाज में उच्च जाति के लोगों की तरह दिन में कहीं भी आ-जा नहीं सकते थे, उनके बच्चे स्कूलों में पढ़ नहीं सकते थे, मंदिरों में नहीं जा सकते थे, उन्हें पक्के मकान के बजाय सिर्फ झोपड़ियों में ही रहने की आजादी थी और भी ऐसे कई प्रतिबंध थे जो बिल्कुल अनुचित थे। इस तरह की सामाजिक समस्याओं को देखकर गुरु जी ने निम्न जाति के लोगों की बुरी परिस्थिति को हमेशा के लिये दूर करने के लिये हर एक को आध्यात्मिक संदेश देना शुरु कर दिया।

उन्होंने लोगों को संदेश दिया कि “ईश्वर ने इंसान बनाया है ना कि इंसान ने ईश्वर बनाया है” अर्थात इस धरती पर सभी को भगवान ने बनाया है और सभी के अधिकार समान है। इस सामाजिक परिस्थिति के संदर्भ में, संत गुरु रविदास जी ने लोगों को वैश्विक भाईचारा और सहिष्णुता का ज्ञान दिया। गुरुजी के अध्यापन से प्रभावित होकर चित्तौड़ साम्राज्य के राजा और रानी उनके अनुयायी बन गये।



### सिक्ख धर्म के लिये गुरु जी का योगदान

सिक्ख धर्मग्रंथ में उनके पद, भक्ति गीत, और दूसरे लेखन (41 पद) आदि दिये गये थे, गुरु ग्रंथ साहिब जो कि पाँचवें सिक्ख गुरु अर्जन देव द्वारा संकलित की गयी। सामान्यतः रविदास जी के अध्यापन के अनुयायी को रविदासीया कहा जाता है और रविदासीया के समूह को अध्यापन को रविदासीया पंथ कहा जाता है।

गुरु ग्रंथ साहिब में उनके द्वारा लिखा गया 41 पवित्र लेख है, जो इस प्रकार है, “रगा-सिरी(1), गौरी(5), असा(6), गुजारी(1), सोरथ(7), धनसरी(3), जैतसारी(1), सुही(3), बिलावल(2), गौंड(2), रामकली(1), मारु(2), केदारा(1), भाईरऊ(1), बसंत(1), और मलहार(3)”।

ईश्वर के द्वारा उनकी महानता की जाँच की गयी थी।

वो अपने समय के महान संत थे और एक आम व्यक्ति की तरह जीवन को जीने की वरीयता देते हैं। कई बड़े राजा-रानियों और दूसरे समृद्ध लोग उनके बड़े अनुयायी थे लेकिन वो किसी से भी किसी प्रकार का धन या उपहार नहीं स्वीकारते थे। एक दिन भगवान के द्वारा उनके अंदर एक आम इंसान के लालच को परखा गया, एक दर्शनशास्त्री गुरु रविदास जी के पास एक पत्थर ले कर आये और उसके बारे में आश्चर्यजनक बात बतायी कि ये किसी भी लोहे को सोने में बदल सकता है। उस दर्शनशास्त्री ने गुरु रविदास को उस पत्थर को लेने के लिये दबाव दिया और साधारण झोपड़े की जगह बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने को कहा। लेकिन उन्होंने ऐसा करने से मना कर दिया।

उस दर्शनशास्त्री ने फिर से उस पत्थर को रखने के लिये गुरुजी पर दबाव डाला और कहा कि मैं इसे लौटते वक्त वापस ले लूँगा साथ ही इसको अपनी झोपड़ी के किसी खास जगह पर रखने को कहा। गुरु जी ने उसकी ये बात मान ली। वो दर्शनशास्त्री कई वर्षों बाद लौटा तो पाया कि वो पत्थर उसी तरह रखा हुआ है। गुरुजी के इस अटलता और धन के प्रति इस विकर्षणता से वो बहुत खुश हुए। उन्होंने वो कीमती पत्थर लिया और वहाँ से गायब हो गये। गुरु रविदास ने हमेशा अपने अनुयायियों को सिखाया कि कभी धन के लिये लालची मत बनो, धन कभी स्थायी नहीं होता, इसके बजाय आजीविका के लिये कड़ी मेहनत करो।

एक बार जब उनको और दूसरे दलितों को पूजा करने के जुर्म में काशी नरेश के द्वारा उनके दरबार में कुछ ब्राह्मणों की शिकायत पर बुलाया गया था,

तो ये ही वो व्यक्ति थे जिन्होंने सभी गैरजरूरी धार्मिक संस्कारों को हटाने के द्वारा पूजा की प्रक्रिया को आसान बना दिया। संत रविदास को राजा के दरबार में प्रस्तुत किया गया जहाँ गुरुजी और पंडित पुजारी से फ़ैसले वाले दिन अपने-अपने इष्ट देव की मूर्ति को गंगा नदी के घाट पर लाने को कहा गया।

राजा ने ये घोषणा की कि अगर किसी एक की मूर्ति नदी में तैरेगी तो वो सच्चा पुजारी होगा अन्यथा झूठा होगा। दोनों गंगा नदी के किनारे घाट पर पहुँचे और राजा की घोषणा के अनुसार कार्य करने लगे। ब्राह्मण ने हल्के भार वाली सूती कपड़े में लपेटी हुयी भगवान की मूर्ति लायी थी वहीं संत रविदास ने 40 कि.ग्रा की चाकोर आकार की मूर्ती ले आयी थी। राजा के समक्ष गंगा नदी के राजघाट पर इस कार्यक्रम को देखने के लिये बहुत बड़ी भीड़ उमड़ी थी।

पहला मौका ब्राह्मण पुजारी को दिया गया, पुजारी जी ने ढेर सारे मंत्र-उच्चारण के साथ मूर्ती को गंगा जी ने प्रवाहित किया लेकिन वो गहरे पानी में डूब गयी। उसी तरह दूसरा मौका संत रविदास का आया, गुरु जी ने मूर्ती को अपने कंधों पर लिया और शिष्टता के साथ उसे पानी में रख दिया जो कि पानी की सतह पर तैरने लगा। इस प्रक्रिया के खत्म होने के बाद ये फ़ैसला हुआ कि ब्राह्मण झूठा पुजारी था और गुरु रविदास सच्चे भक्त थे।

दलितों को पूजा के लिये मिले अधिकार से खुश होकर सभी लोग उनके पाँव को स्पर्श करने लगे। तब से, काशी नरेश और दूसरे लोग जो कि गुरु जी के खिलाफ थे, अब उनका सम्मान और अनुसरण करने लगे। उस खास खुशी के और विजयी पल को दरबार की दिवारों पर भविष्य के लिये सुनहरे अक्षरों से लिख दिया गया।

संत रविदास को कुष्ठरोग को ठीक करने के लिये प्राकृतिक शक्ति मिली हुई थी।

समाज में उनकी महान प्राकृतिक शक्तियों से भरी गजब की क्रिया के बाद ईश्वर के प्रति उनकी सच्चाई से प्रभावित होकर हर जाति और धर्म के लोगों पर उनका प्रभाव पड़ा और सभी गुरु जी के मजबूत विद्यार्थी, अनुयायी और भक्त बन गये। बहुत साल पहले उन्होंने अपने अनुयायियों को उपदेश दिया था और तब एक धनी सेठ भी वहाँ पहुँचा मनुष्य के जन्म के महत्त्व के ऊपर धार्मिक उपदेश को सुनने के लिये।

धार्मिक उपदेश के अंत में गुरु जी ने सभी को प्रसाद के रूप में अपने मिट्टी के बर्तन से पवित्र पानी लोगों ने उसको ग्रहण किया और पीना शुरू किया

हालाँकि धनी सेठ ने उस पानी को गंदा समझ कर अपने पीछे फेंक दिया जो बराबर रूप से उसके पैरों और जमीन पर गिर गया। वो अपने घर गया और उस कपड़े को कुष्ठ रोग से पीड़ित एक गरीब आदमी को दे दिया। उस कपड़े को पहनते ही उस आदमी के पूरे शरीर को आराम महसूस होने लगा जबकि उसके जखम जल्दी भरने लगे और वो जल्दी ठीक हो गया।

हालाँकि धनी सेठ को कुष्ठ रोग हो गया जो कि महँगे उपचार और अनुभवों और योग्य वैद्य द्वारा भी ठीक नहीं हो सका। उसकी स्थिति दिनों-दिन बिगड़ती चली गयी तब उसे अपनी गलतियों का एहसास हुआ और वो गुरु जी के पास माफी माँगने के लिये गया और जख्मों को ठीक करने के लिये गुरु जी से वो पवित्र जल प्राप्त किया। चूँकि गुरु जी बेहद दयालु थे इसलिये उसके माफ करने के साथ ही ठीक होने का ढेर सारा आशीर्वाद भी दिया। अंततः वो धनी सेठ और उसका पूरा परिवार संत रविदास का भक्त हो गया।

### संत रविदास का सकारात्मक नजरिया

उनके समय में शुद्रों (अस्पृश्य) को ब्राह्मणों की तरह जनेऊ, माथे पर तिलक और दूसरे धार्मिक संस्कारों की आजादी नहीं थी। संत रविदास एक महान व्यक्ति थे जो समाज में अस्पृश्यों के बराबरी के अधिकार के लिये उन सभी निषेधों के खिलाफ थे जो उन पर रोक लगाती थी। उन्होंने वो सभी क्रियाएँ जैसे जनेऊ धारण करना, धोती पहनना, तिलक लगाना आदि निम्न जाति के लोगों के साथ शुरु किया जो उन पर प्रतिबंधित था।

ब्राह्मण लोग उनकी इस बात से नाराज थे और समाज में अस्पृश्यों के लिये ऐसे कार्यों को जाँचने का प्रयास किया। हालाँकि गुरु रविदास जी ने हर बुरी परिस्थिति का बहादुरी के साथ सामना किया और बेहद विनम्रता से लोगों का जवाब दिया। अस्पृश्य होने के बावजूद भी जनेऊ पहनने के कारण ब्राह्मणों की शिकायत पर उन्हें राजा के दरबार में बुलाया गया। वहाँ उपस्थित होकर उन्होंने कहा कि अस्पृश्यों को भी समाज में बराबरी का अधिकार मिलना चाहिये क्योंकि उनके शरीर में भी दूसरों की तरह खून का रंग लाल और पवित्र आत्मा होती है।

संत रविदास ने तुरंत अपनी छाती पर एक गहरी चोट की और उस पर चार युग जैसे सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलयुग की तरह सोना, चाँदी, ताँबा और सूती के चार जनेऊ खींच दिया। राजा समेत सभी लोग अर्चभित रह गये

और गुरु जी के सम्मान में सभी उनके चरणों को छूने लगे। राजा को अपने बचपने जैसे व्यवहार पर बहुत शर्मिंदगी महसूस हुयी और उन्होंने इसके लिये माफी माँगी। गुरु जी ने सभी माफ करते हुए कहा कि जनेऊ धारण करने का ये मतलब नहीं कि कोई भगवान को प्राप्त कर लेता है। इस कार्य में वो केवल इसलिये शामिल हुए ताकि वो लोगों को वास्तविकता और सच्चाई बता सके। गुरु जी ने जनेऊ निकाला और राजा को दे दिया इसके बाद उन्होंने कभी जनेऊ और तिलक का इस्तेमाल नहीं किया।

### कुंभ उत्सव पर एक कार्यक्रम

एक बार पंडित गंगा राम गुरु जी से मिले और उनका सम्मान किया। वह हरिद्वार में कुंभ उत्सव में जा रहे थे, गुरु जी ने उनसे कहा कि ये सिक्का आप गंगा माता को दे दिजियेगा, अगर वो इसे आपके हाथों से स्वीकार करें। पंडित जी ने बड़ी सहजता से इसे ले लिया और वहाँ से हरिद्वार चले गये। वो वहाँ पर नहाये और वापस अपने घर लौटने लगे बिना गुरु जी का सिक्का गंगा माता को दिये।

वह अपने रास्ते में थोड़ा कमजोर होकर बैठ गये और महसूस किया कि वो कुछ भूल रहे हैं, वो दुबारा से नदी के किनारे वापस गये और जोर से चिल्लाए माता, गंगा माँ पानी से बाहर निकली और उनके अपने हाथ से सिक्के को स्वीकार किया। माँ गंगा ने संत रविदास के लिये सोने के कँगन भेजे। पंडित गंगा राम घर वापस आये वो कँगन गुरु जी के बजाय अपनी पत्नी को दे दिया।

एक दिन पंडित जी की पत्नी उस कँगन को बाजार में बेचने के लिये गयी। सोनार चालाक था, सो उसने कँगन को राजा और राजा ने रानी को दिखाते का फैसला किया। रानी ने उस कँगन को बहुत पसंद किया और एक और लाने को कहा। राजा ने घोषणा की कि कोई इस तरह के कँगन नहीं लेगा, पंडित अपने किये पर बहुत शर्मिंदा था क्योंकि उसने गुरुजी को धोखा दिया था। वो रविदास जी से मिला और माफी के लिये निवेदन किया। गुरु जी ने उससे कहा कि “मन चंगा तो कठौती में गंगा” ये लो दूसरे कँगन जो पानी से भरे जल में मिट्टी के बर्तन में गंगा के रूप में यहाँ बह रही है। गुरु जी की इस दैवीय शक्ति को देखकर वो गुरु जी का भक्त बन गया।

### उनके पिता के मौत के समय की घटना

रविदास की पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने पड़ोसियों से विनती की कि वो गंगा नदी के किनारे अंतिम रिवाज में मदद करें। हालाँकि ब्राह्मण रीति के संदर्भ में खिलाफ थे कि वो गंगा के जल से स्नान करेंगे जो रस्म की जगह से मुख्य शहर की ओर जाता है और वो प्रदूषित हो जायेगा। गुरु जी बहुत दुखी और मजबूर हो गये हालाँकि उन्होंने कभी भी अपना धैर्य नहीं खोया और अपने पिता की आत्मा की शांति के लिये प्रार्थना करने लगे। अचानक से वातावरण में एक भयानक तूफान आया और नदी का पानी उल्टी दिशा में बहना प्रारंभ हो गया और जल की एक गहरी तरंग आयी और लाश को अपने साथ ले गयी। इस भवंडर ने आसपास की सभी चीजों को सोख लिया। तब से, गंगा का पानी उल्टी दिशा में बह रहा है।

### कैसे बाबर प्रभावित हुए रविदास के अध्यापन से

इतिहास के अनुसार बाबर मुगल साम्राज्य का पहला राजा था जो 1526 में पानीपत का युद्ध जीतने के बाद दिल्ली के सिंहासन पर बैठा जहाँ उसने भगवान के भरोसे के लिये लाखों लोगों को कुर्बान कर दिया। वो पहले से ही संत रविदास की दैवीय शक्तियों से परिचित था और फैसला किया कि एक दिन वो हुमायुँ के साथ गुरु जी से मिलेगा। वो वहाँ गया और गुरु जी को सम्मान देने के लिये उनके पैर छूएँ हालाँकि आशीर्वाद के बजाय उसे गुरु जी से सजा मिली क्योंकि उसने लाखों निर्दोष लोगों की हत्याएँ की थी। गुरु जी ने उसे गहराई से समझाया जिसने बाबर को बहुत प्रभावित किया और इसके बाद वो भी संत रविदास का अनुयायी बन गया तथा दिल्ली और आगरा के गरीबों की सेवा के द्वारा समाज सेवा करने लगा।

### संत रविदास की मृत्यु

समाज में बराबरी, सभी भगवान एक है, इंसानियत, उनकी अच्छाई और बहुत से कारणों की वजह से बदलते समय के साथ संत रविदास के अनुयायियों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। दूसरी तरफ, कुछ ब्राह्मण और पीरन दित्त मिरासी गुरु जी को मारने की योजना बना रहे थे, इस वजह से उन लोगों ने गाँव से दूर एक एकांत जगह पर मिलने का समय तय किया। किसी विषय पर चर्चा के लिये उन लोगों ने गुरु जी को वहाँ पर बुलाया जहाँ उन्होंने गुरु जी की हत्या

की साजिश रची थी हालाँकि गुरु जी को अपनी दैवीय शक्ति की वजह से पहले से ही सब कुछ पता चल गया था।

जैसे ही चर्चा शुरू हुई, गुरु जी उन्हीं के एक साथी भल्ला नाथ के रूप में दिखायी दिये जो कि गलती से तब मारा गया था। बाद में जब गुरु जी ने अपने झोपड़े में शंखनाद किया, तो सभी हत्यारे गुरु जी को जिंदा देख भौंचक्के रह गये तब वो हत्या की जगह पर गये जहाँ पर उन्होंने संत रविदास की जगह अपने ही साथी भल्ला नाथ की लाश पायी। उन सभी को अपने कृत्य पर पछतावा हुआ और वो लोग गुरु जी से माफी माँगने उनके झोपड़े में गये।

हालाँकि, उनके कुछ भक्तों का मानना है कि गुरु जी की मृत्यु प्राकृतिक रूप से 120 या 126 साल में हो गयी थी। कुछ का मानना है उनका निधन वाराणसी में 1540 एडी में हुआ था।

### गुरु रविदास जी के लिये स्मारक

वाराणसी में श्री गुरु रविदास पार्क है, जो नगवा में उनके यादगार के रूप में बनाया गया है, जो उनके नाम पर “गुरु रविदास स्मारक और पार्क” बना है।

### गुरु रविदास घाट

वाराणसी में पार्क से बिल्कुल सटा हुआ उनके नाम पर गंगा नदी के किनारे लागू करने के लिये गुरु रविदास घाट भी भारतीय सरकार द्वारा प्रस्तावित है।

### संत रविदास नगर

ज्ञानपुर जिले के निकट संत रविदास नगर है, जो कि पहले भदोही नाम से था अब उसका नाम भी संत रविदास नगर है।

इनके सम्मान में सीर गोवर्धनपुर, वाराणसी में श्री गुरु रविदास जन्म स्थान मंदिर स्थित है, जो इनके सम्मान में बनाया गया है पूरी दुनिया में इनके अनुयायीयों द्वारा चलाया जाता है, जो अब प्रधान धार्मिक कार्यालय के रूप में है।

### श्री गुरु रविदास स्मारक गेट

वाराणसी के लंका चौराहे पर एक बड़ा गेट है, जो इनके सम्मान में बनाया गया है। इनके नाम पर देश के साथ ही विदेशों में भी स्मारक बनाये गये हैं।

# 4

---

## धरमदास

---

धरमदास (या धनी धरमदास , 1433 - 1543 अनुमानित) कबीर के परम शिष्य और उनके समकालीन सन्त एवं हिन्दी कवि थे। धनी धरमदास को छत्तीसगढ़ी के आदि कवि का दर्जा प्राप्त है। कबीर के बाद धरमदास कबीरपंथ के सबसे बड़े उन्नायक थे।

### परिचय

संत धरमदास को कबीर के शिष्यों में सर्वप्रमुख मानने की प्रवृत्ति पाई जाती है, किंतु ये उनके ठीक समसामयिक भी नहीं ठहरते। इनके द्वारा स्थापित कही जानेवाली 'छत्तीसगढ़ी शाखा' की कबीरपंथी परंपरा की तालिका के अनुसार इनका आविर्भाव काल विक्रम संवत् की 17वीं शताब्दी के द्वितीय वा प्रथम चरण से पहले जाता नहीं जान पड़ता जिस कारण ये कबीर के परवर्ती हो जाते हैं। इसी प्रकार कतिपय सांप्रदायिक ग्रंथों तथा स्वयं इनकी भी कुछ पंक्तियों द्वारा इनका उन्हें, जिंदरूप में (अमर सुखनिधान) तथा विदेही बनकर 'झीना परस' (घ.दा. की बानी) दिखलाते हुए ही, मानना, सिद्ध होता है। इसके सिवाय बिहारवाले दरिया साहब के ज्ञानदीपक (159- 160) से भी स्पष्ट है कि, धरमदास के रूप में, स्वयं कबीर साहब ने ही दो सौ वर्ष पीछे अवतार धारण किया था और नया पंथ चलाया था। अतएव अधिक संभव है कि इन्होंने उनके आदर्श एवं उपदेशों से विशेष प्रेरणा ग्रहण करके ही उन्हें गुरुरूप में स्वीकार कर लिया हो। फिर भी कबीर पंथ के अधिकांश अनुयायी इन दोनों की प्रत्यक्ष भेंट में विश्वास करते हैं और तदनुसार इनका जीवन वृत्त भी देते हैं।

कहते हैं कि इनका पूर्व नाम 'जुडावन' था और ये कसौघन बनिया थे, इनका निवास स्थान बाँधवगढ़ था। इनकी पत्नी का नाम अमीन था और इनके नारायणदास एवं चूड़ामणि नामक दो पुत्र भी थे जिनमें से प्रथम कबीर साहब के प्रति विरोधभाव रखता था। ये पहले वैष्णवधर्म में दीक्षित रह चुके थे और इनके गुरु का नाम रूपदास था। कई तीर्थों की यात्रा कर लेने पर अपने जीवन के तृतीय भाग में इन्हें एक बार मथुरा में कबीर साहब के साक्षात् दर्शन हो गए और फिर काशी में भी दोनों की भेंट हुई। इसके अनंतर कबीर साहब का इनके यहाँ बाँधगढ़ जाना, इन्हें उपदेश देना तथा इनके द्वारा कबीर पंथ का प्रचार किया जाना भी कहा गया है। इसी प्रकार यह प्रसिद्ध है कि इनका देहांत पुरी में हुआ जहाँ पर ये कबीर साहब के साथ रहे और इनकी समाधि भी यहीं निर्मित हुई।

संत धरमदास द्वारा रचे अनेक ग्रंथों के नाम दिए जाते हैं और उनमें अधिकतर इनका, कबीर साहब के साथ, संवाद वा प्रश्नोत्तर पाया जाता है जिससे इनके द्वारा उनका रचित भी होना पूर्णतः सिद्ध नहीं हो पाता। इनकी कई फुटकर बानियों का एक संग्रह 'धनी धरमदास की बानी' नाम से प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित है। वहाँ पर ये एक सगुणोपासक भक्त के रूप में दिखलाई पड़ते हैं और इनकी कबीर साहब के प्रति प्रगाढ़ भक्ति एवं श्रद्धा प्रकट होती है। कबीर साहब वहाँ इनके इष्टदेव से प्रतीत होते हैं और उन्हें ये अपने स्वामी अथवा पति तक के रूप में, आर्तभाव के साथ, स्वीकार करते हैं। इनके द्वारा प्रदर्शित भावों में हृदय की सच्चाई लक्षित होती है तथा इनका अपनी अंतःसाधना का वर्णन भी बहुत स्पष्ट व सरल है। दादूपंथी राघवदास ने अपनी भक्तमाल के अंतर्गत इनके सात शिष्यों के नाम दिए हैं तथा उनमें से प्रथम दो अर्थात् चूड़ामणि एवं कुलपति को इनका 'नाती' अर्थात् संबंधी ही बतलाया है। शेष पाँच में से जागू, भगता और सूत गोपाल, वस्तुतः इनके गुरुभाई रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं तथा साहिबदास एवं दल्हण के विषय में कोई पता नहीं चलता। इनके जीवनवृत्त की चर्चा पर अभी तक पौराणिकता की ही छाप लगी जान पड़ती है, किंतु इसके कारण इनका महत्त्व कम नहीं हो सकता।

धनी धर्मदास संत कबीर की निर्गुण काव्य धारा के प्रमुख संत हैं तथा संत परम्परा को आगे बढ़ाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। धनी धर्मदास संत कबीर के प्रधान शिष्य और कबीर पंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं। डा. राम रतन भटनागर के मतानुसार "छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ के प्रवर्तक धर्मदास हैं।" 1



धनी धर्मदास का जन्म संवत् 1452 कि. में बांधोगढ़ के प्रसिद्ध वैष्णव मनमहेश जी के घर में हुआ था। इनका विवाह पथरहट नगर की कन्या सुलक्षणावती के साथ संवत् 1480 ई. में हुआ था। सुलक्षणावती को कबीरपंथ में आमिनमाता के नाम से भी जाना जाता है। संवत् 1520 वि. में बांधोगढ़ में विशाल जनसमूह के समक्ष धर्मदास जी ने अपनी पत्नी के साथ सद्गुरु कबीर से दीक्षा प्राप्त की थी। इनकी अनन्य और अडिग भक्ति से प्रसन्न होकर संत कबीर ने उन्हें अपना प्रधान उत्तराधिकारी शिष्य बनाया और अटल बयालीस वंश तक कबीरपंथ की गुरुवाई का आशीर्वाद प्रदान किया था।

संत कबीर की समस्त वाणी-वचनों को संग्रहीत और लिपिबद्ध करने का महान कार्य धनी धर्मदास ने ही किया था। इसी बात की ओर संकेत करते हुए आचार्य राम चन्द्र शुक्ल जी ने भी लिखा है “कबीर वाणी का संग्रह उनके शिष्य धर्मदास जी ने संवत् 1520 वि. में किया था।” ज्ञान देने का एक माध्यम होता है, जैसे गीता को सुनने का श्रेय अर्जुन को है, वैसे ही संत कबीर की समस्त वाणी को सुनने और ज्यों का त्यों लिपिबद्ध करने का श्रेय धर्मदास जी को है। धर्मदास जी अत्यन्त विनम्रतापूर्वक संत कबीर से जीव, जगत, आत्मा, परमात्मा से सम्बन्धित प्रश्न पूछते जाते थे और संत कबीर द्वारा दिये उत्तर को लिपिबद्ध करके, संसार के कल्याण के लिए प्रस्तुत कर दिया था जो आज भी दामाखेड़ा वंशगद्दी (जिला बलौदा बाजार) में सद्गुरु कबीर धर्मदास संवाद के रूप में उपलब्ध है। धनी धर्मदास कबीर वाणी के संग्रह के साथ, स्वयं भी अनेक भक्ति पदों की रचना की है, जो यत्र-तत्र स्फुट पदों के रूप में उपलब्ध है। आचार्य गृन्धमुनि नाम साहेब द्वारा सम्पादित “धनी धर्मदास जी साहेब और आमिनमाता की शब्दावली” उनकी प्रमाणिक रचना मानी जाती है, क्योंकि यह वंश गद्दी में उपलब्ध अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों, शब्दावली और अन्य प्रकाशित ग्रन्थों के आधार पर तैयार की गई है। इस शब्दावली के सम्पादक आचार्य गृन्धमुनि नाम साहेब का धनी धर्मदास के काव्य के सम्बन्ध में यह कथन बिल्कुल सत्य है कि “वे सत्य के साधक थे, सत्य की ओर जाने वाले यात्रियों का पथ-प्रदर्शन करने वाले अद्वितीय पथ-प्रदर्शक थे। उन्होंने अपने उपदेशों के द्वारा मानव समाज को उस महान आदर्श की ओर संकेत किया है, जिससे मानव महान बनता है, नर से नारायण बनता है। उनका प्रत्येक वचन उनकी गहरी और तीव्र अनुभूति का दर्पण है।”

संत कवि धनी धर्मदास का सम्पूर्ण काव्य सद्गुरु की उपासना का काव्य है। उनके काव्य की भाषा पूर्वी हिन्दी है, जिससे कहीं-कहीं उर्दू, फारसी के शब्द भी पाये जाते हैं। धर्मदास जी के पद लोक मंगल की भावना से प्रेरित, लोक काव्य के अधिक निकट है। लोक गीतों की शैली अपनाये हुए अत्यन्त सरस, मधुर, लालित्यपूर्ण और गेय हैं। हिन्दी के अतिरिक्त बघेलखण्डी और छत्तीसगढ़ी भाषा में उनकी रचनायें मिलती हैं। वस्तुतः लोगों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उन्होंने लोक जीवन के निकट की भाषा का प्रयोग किया है। उनके काव्य का लोकस्पर्शी अंश हिन्दी साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने मंगल, होली, बसंत, बधावा, सोहर, चौका आरती आदि छन्दों का प्रयोग किया है। इसीलिए वे सच्चे अर्थों में जन-भाषा के कवि कहे जाते हैं। उनके काव्य में प्रकृति संवेदना का व्यापक फलक भी दिखाई पड़ता है।

डा. सत्यभाषा आडिल के अनुसार “छत्तीसगढ़ की माटी धर्मदास के भावप्रवण गीतों से संस्कारित व महिमा मंडित है। छत्तीसगढ़ में प्रथम गीत धर्मदास के ही मिलते हैं। पूर्वी भाव शैली ने छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी रूप धर लिया है। विन्ध्य से छत्तीसगढ़ आते-आते उनके गीत छत्तीसगढ़ी शैली में आत्मीय व अनुपम बन गए हैं।” वास्तव में धर्मदास जी के गीत बांधोगढ़ से चलकर कुदरमल, रतनपुर, धमधा, कवर्धा होते हुए वर्तमान समय में दामाखेड़ा में केन्द्रित हो गये हैं।

धनी धर्मदास छत्तीसगढ़ के प्रथम संत कवि के रूप में जाने जाते हैं। इस संबंध में राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त डॉ. निरूपमा शर्मा का यह कथन उद्धृत करना एकदम सटीक लगता है कि “छत्तीसगढ़ के लिए गर्व का विशय है कि छत्तीसगढ़ के साहित्य में धनी धर्मदास प्रथम कवि और आमिन माता प्रथम कवयित्री हैं। संसार में ऐसा उदाहरण कहीं नहीं है, जहाँ पति-पत्नी दोनों बीजमन्त्र बनकर सृजन धर्मिता के मूल स्रोत हों। छत्तीसगढ़ राज्य भारत का ऐसा राज्य है, जहाँ पर यह सम्भव हुआ है।”

सन्त कवि धनी धर्मदास की रचनाओं का सर्वाधिक प्रभाव छत्तीसगढ़ में पड़ा है। आज अकेले छत्तीसगढ़ में ही 50-60 लाख कबीरपंथी धनी धर्मदास की वंशगद्दी से जुड़े हुए हैं। छत्तीसगढ़ी भाषा में धनी धर्मदास की अनेक रचनायें हैं। उदाहरण के लिए धनी धर्मदास अपने सद्गुरु से विनती करते हुए छत्तीसगढ़ी भाषा में कहते हैं -

“अरजी भंवर बीच नइया हो,  
 साहेब पार लगा दे।  
 तन के नहुलिया सुरती के बलिया,  
 खेवनहार मतवलिया हो।  
 हमर मन पार उतरगे,  
 हमू हवन संग के जवईया हो।  
 माता पिता सुत तिरिया बंधु,  
 कोई नईये संग के जवईया हो।  
 धरमदास के अरज गोसाईं,  
 आवागमन के मिटईया हो।  
 साहेब पार लगा दे।।”

धनी धर्मदास का काव्य विशुद्ध हृदय की सहज अभिव्यक्ति है, हार्दिक भावों का सहज प्रकाशन है। यही कारण है कि उनके काव्य में कहीं भी वाग्विलास, आलंकारिक छन्द विधान का कोई भी स्थान नहीं है। उन्होंने अपने हार्दिक आध्यात्मिक भावों को कितने सहज, सरल ढंग से प्रस्तुत किया है, जो पाठक के हृदय में अपना स्थान बना लेता है। उदाहरणतया -

“पिंजरा तेरा झीना, पढ़ ले रे सतनाम सुवा।  
 तोर काहे के पिंजरा,  
 काहे के लगे हे किंवाड़ी रे सुवा।  
 तोर माटी के पिंजरा,  
 कपट के लगे हे किंवाड़ी रे सुवा।  
 पिंजरा में बिलाई,  
 कैसे के नींद तोहे आवै रे सुवा।  
 तोर सकल कमाई,  
 साधु के संगति पाई रे सुवा।  
 धरमदास गारी गावै,  
 संतन के मन भाई रे सुवा।।”

किसी कवि या रचनाकार की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह कालातीत होता है। समय उसका क्षय नहीं करता है, उसे समय की सीमा में बांधा नहीं जा सकता है बल्कि प्रत्येक देश, काल, परिस्थिति में उसकी चमक

शुक्ल पक्ष की भाँति बिखरती जाती है। वह केवल समकालीन उपयोगिता की वस्तु नहीं होती है बल्कि उसकी प्रासंगिकता हर युग में एक समान बनी रहती है। धनी धर्मदास के शाश्वत सत्य संदेश का मूल्य कभी कम नहीं होगा। असत्य का प्रकोप जितना बढ़ता है, सत्य उतना ही प्रासंगिक हो जाता है। धनी धर्मदास के पद यदि हृदय में उतर जायें तो आध्यात्मिक क्रान्ति का संचार कर देते हैं। धनी धर्मदास के काव्य के बारे में महान विचारक ओशो रजनीश का यह कथन पूर्णतया सही है कि “यह केवल विचार नहीं है। यह धर्मदास ने अपना सारा धन तुम्हारे सामने विखेर दिया है। इसे चुन लो, इसे गुन लो।”

# 5

---

## सुन्दरदास

---

ज्ञान के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाले संत सुन्दरदासजी एक कवि ही नहीं बल्कि एक महान संत, धार्मिक एवं समाज सुधारक थे। उनका जन्म जयपुर राज्य की पुरानी राजधानी देवनगरी दौसा में भूसर गोत्र के खंडेलवाल वैश्य कुल में चैत्र शुक्ल नवमी संवत् 1653 में हुआ। उनके पिता का नाम साह चोखा उमर नाम परमानंद तथा माता का नाम सती था। सुन्दर दास जी संत दादू के शिष्य थे। उन्होंने छोटी सी आयु में ही अपने गुरु से दीक्षा और आध्यात्मिक उपदेश प्राप्त कर लिया। सुन्दरदास जी बाल ब्रम्हचारी, बाल कवि एवं बाल योगी थे। अपनी प्रखर प्रतिभा, भगवत प्रेम एवं उत्तम स्वाभाव के कारण सबके प्रिय हो गए .संवत् 1664 में जगजीवन जी दादू शिष्य रज्जबजी आदि के साथ काशी चले गए .काशी में रहकर उन्होंने संस्कृत, हिंदी व व्याकरण, कोष षट्शास्त्र, पुराण, वेदान्त का गहन अध्ययन किया। संख्य योग, वृदांत के वृहद् शास्त्र, उपनिषद्, गीता, योगवशिष्ट, शंकर भाष्य आदि का भली भांति मनन किया। काशी में सुन्दर दास जी असी घाट के पास रहते थे।

आप अपना अध्ययन समाप्त कर कार्तिक बदी चौदस, संवत् 1682 से जयपुर राज्य के शेखावटी प्रान्तवर्ती फतेहपुर में आये और वहां निवास किया। आप वहाँ योगाभ्यास कथा -कीर्तन तथा ध्यान आदि करते रहे। आपका देशाटन के प्रति शौक होने के कारण जहाँ -जहाँ दादूजी गए व बसे थे तथा साम्भर, आमेर, कल्याणपुर, दिल्ली, आगरा, गुजरात, लाहौर, मेवाड़, मालवा, बिहार आदि स्थानों पर प्रायः जाया करते थे।

संत सुंदर दास जी का साहित्य सृजनकाल संवत् 1664 से लेकर मृत्यु पर्यंत चलता रहा। आपने 42 मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं, जो आपकी प्रखर प्रतिभा को उजागर करते हैं। आपके ग्रंथों की भाषा सरल, सुबोध, स्पष्ट, सरस है और सभी रचनायें संयुक्त हैं। स्वामी जी ने ब्रजभाषा, राज पूतानी और खड़ी बोली मिश्रित भाषा के साथ ही फारसी शब्द मिश्रित पंजाबी, पूर्वी तथा गुजराती भाषाओं में कविता की है।

सन् 1682 में आप फतेहपुर शेखावाटी में आये। लगभग 60 वर्ष की अवस्था तक आप मुख्यतः फतेहपुर में ही रहे। फतेहपुर का नवास अलिफ खां आपका बहुत सम्मान करता था। नवाब अल्फ खां स्वयं कवि था, उसने 77 ग्रंथों की रचना की हैं। एक बार नवाब अलिफ खां ने आपको कोई चमत्कार दिखाने के लिए कहा तब आपने कहा कि नवाब साहब आप जिस जाजम पर बैठे हो उसे उठाकर देखो। नवाब ने जाजम का एक कोना उठाकर देखा तो उसका गढ़ और दूसरा कोना उठाकर देखा तो पूरा नगर दिखाई दिया। नवाब ने आपके पैर पकड़ लिए।

ज्ञान मार्ग के अनुयायी सुंदर दास जी ने अद्वैत मत का प्रतिपादन किया है। उनका ब्रह्म अद्वैत है, वह ज्ञानमय है और सर्वश्रेष्ठ शक्ति वाला है। संत जी ने गुरु महिमा, गुरु उपदेश, भ्रम निवारण, रामनाम ब्रह्म का वास्तविक अर्थ, आत्मा का सच्चा स्वरूप आदि पर गहन विचार प्रगट किये हैं।

संत सुंदर दास जी ने 'अधीरता' पर सर्वाधिक छन्द लिखे हैं। इन्होंने इससे दूर रहने के लिए कहा है कि अधीरता तृष्णा को जन्म देती है।

# 6

---

## दादूदयाल

---

दादू दयाल हिन्दी के भक्तिकाल में ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख सन्त कवि थे। इन्होंने एक निर्गुणवादी संप्रदाय की स्थापना की, जो 'दादूपंथ' के नाम से ज्ञात है। वे अहमदाबाद के एक धुनिया के पुत्र और मुगल सम्राट् शाहजहाँ (1627-58) के समकालीन थे। उन्होंने अपना अधिकांश जीवन राजपूताना में व्यतीत किया एवं हिन्दू और इस्लाम धर्म में समन्वय स्थापित करने के लिए अनेक पदों की रचना की। उनके अनुयायी न तो मूर्तियों की पूजा करते हैं और न कोई विशेष प्रकार की वेशभूषा धारण करते हैं। वे सिर्फ राम का नाम जपते हैं और शांतिमय जीवन में विश्वास करते हैं, यद्यपि दादू पंथियों का एक वर्ग सेना में भी भर्ती होता रहा है। भारत के अन्य भक्त और संत की तरह दादू दयाल के जीवन के बारे में भी प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। इनका जन्म, मृत्यु, जीवन और व्यक्तित्व किंवदन्तियों, अफवाहों और कपोल-कल्पनाओं से ढका हुआ है। इसका एक कारण यह है कि ये संत आम जनता के बीच से उभरे थे।

### जीवन परिचय

दादू पेशे से धुनिया थे और बाद में वह धार्मिक उपदेशक तथा घुमक्कड़ बन गए। वह कुछ समय तक सांभर व आंबेर और अंततः नारायणा में रहे, जहाँ उनकी मृत्यु हुई। ये सभी स्थान जयपुर तथा अजमेर (राजस्थान राज्य) के आसपास हैं। इन्होंने वेदों की सत्ता, जातिगत भेदभाव और पूजा के सभी विभेदकारी आडंबरों को अस्वीकार किया। इसके बदले उन्होंने जप (भगवान के नाम की पुनरावृत्ति) और आत्मा को ईश्वर की दुल्हन मानने जैसे मूल भावों पर

ध्यान केंद्रित किया। उनके अनुयायी शाकाहार और मद्यत्याग पर जोर देते हैं और सन्यास दादू पंथ का एक अनिवार्य घटक है। दादू के उपदेश मुख्यतः काव्य सूक्तियों और ईश्वर भजन के रूप में हैं, जो 5,000 छंदों के संग्रह में संग्रहीत हैं, जिसे बानी (वाणी) कहा जाता है। ये अन्य संत कवियों, जैसे कबीर, नामदेव, रविदास और हरिदास की रचनाओं के साथ भी किंचित परिवर्तित छंद संग्रह पंचवाणी में शामिल हैं। यह ग्रंथ दादू पंथ के धार्मिक ग्रंथों में से एक है। आम जनता का विवरण आम तौर पर कहीं नहीं मिलता। यही कारण है कि इन संतों के जीवन का प्रामाणिक विवरण हमें नहीं मिलता। दादू, रैदास और यहाँ तक की कबीर का नामोल्लेख भी उस युग के इतिहास-ग्रंथों में यदा-कदा ही मिलता है। संतों का उल्लेख उनकी मृत्यु के वर्षों बाद मिलने लगता है, जब उनके शिष्य संगठित राजनीतिक-सामाजिक शक्ति के रूप में उभर कर आने लगे थे। इतनी उपेक्षा के बावजूद, दादू दयाल उन कवियों में से नहीं हैं, जिन्हें भारतीय जनता ने भुला दिया हो। आधुनिक शोधकर्ताओं ने अनुसंधान करके ऐसे अनेक विस्मृत कवियों को खोज निकालने का गौरव प्राप्त किया है।

## विभिन्न मतों के अनुसार

चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी के अनुसार अठारह वर्ष की अवस्था तक अहमदाबाद में रहे, छह वर्ष तक मध्य प्रदेश में घूमते रहे और बाद में सांभर (राजस्थान) में आकर बस गये। यदि दादू का जन्म अहमदाबाद में ही हुआ था, तो वे सांभर कब और क्यों आये। सांभर आने से पहले उन्होंने क्या किया था और कहाँ-कहाँ भ्रमण कर चुके थे। इसकी प्रामाणिक सूचना हमें नहीं मिलती।

जन गोपाल की 'परची' के अनुसार दादू तीस वर्ष की अवस्था में सांभर में आकर रहने लगे थे। सांभर निवास के दिनों के बाद की उनकी गतिविधियों की थोड़ी बहुत जानकारी मिलती है। सांभर के बाद वह कुछ दिनों तक आमेर में (जयपुर के निकट) रहे। यहाँ पर अभी भी एक 'दादू द्वारा' बना हुआ है।

कुछ लोगों का कहना है, दादू ने फतेहपुर सीकरी में अकबर से भेंट की थी और चालीस दिनों तक आध्यात्मिक विषयों की चर्चा भी करते रहे थे। यद्यपि ऐतिहासिक दस्तावेजों में यह जानकारी उपलब्ध नहीं है। यह अनुमान का विषय है। वैसे अकबर ने उस युग के अनेक धार्मिक भक्तों और संतों से विचार-विमर्श किया था। कई हिन्दू संत भी उनसे मिलने गये थे। सम्भव है उनमें दादू भी एक रहे हों और अपने जीवन काल में इतने प्रसिद्ध न होने के कारण उनकी ओर ध्यान



केन्द्रित न किया गया हो। अन्य संतों की तरह दादू दयाल ने भी काफी देश-भ्रमण किया था विशेषकर उत्तर भारत, काशी), बिहार, बंगाल और राजस्थान के भीतरी भागों में लम्बी यात्राएँ की थीं। अन्त में, ये नराणा, राजस्थान में रहने लगे, जहाँ उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।

### जन्म

संत कवि दादू दयाल का जन्म फागुन सुदी आठ बृहस्पतिवार संवत् 1601 (सन् 1544 ई.) को हुआ था। दादू दयाल का जन्म भारत के राज्य गुजरात के अहमदाबाद शहर में हुआ था, पर दादू के जन्म स्थान के बारे में विद्वान् एकमत नहीं है। दादू पंथी लोगों का विचार है कि वह एक छोटे से बालक के रूप में (अहमदाबाद के निकट) साबरमती नदी में बहते हुए पाये गये। दादू दयाल का जन्म अहमदाबाद में हुआ था या नहीं, इसकी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के साधन अब हमारे पास नहीं हैं। फिर भी इतना तो निश्चित है कि उनके जीवन का बड़ा भाग राजस्थान में बीता।

### पारिवारिक जीवन

उनके परिवार का सम्बन्ध राजदरबार से नहीं था। तत्कालीन इतिहास लेखकों और संग्रहकर्त्ताओं की दृष्टि में इतिहास के केंद्र राजघराने ही हुआ करते थे। दादू दयाल के माता-पिता कौन थे और उनकी जाति क्या थी। इस विषय पर भी विद्वानों में मतभेद है। प्रामाणिक जानकारी के अभाव में ये मतभेद अनुमान के आधार पर बने हुए हैं। उनके निवारण के साधन अनुपलब्ध हैं। एक किंवदंती के अनुसार, कबीर की भाँति दादू भी किसी कवाँरी ब्राह्मणी की अवैध सन्तान थे, जिसने बदनामी के भय से दादू को साबरमती नदी में प्रवाहित कर दिया। बाद में, इनका लालन-पालन एक धुनिया परिवार में हुआ। इनका लालन-पालन लोदीराम नामक नागर ब्राह्मण ने किया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार इनकी माता का नाम बसी बाई था और वह ब्राह्मणी थी। यह किंवदंती कितनी प्रामाणिक है और किस समय से प्रचलित हुई है, इसकी कोई जानकारी नहीं है। सम्भव है, इसे बाद में गढ़ लिया गया हो। दादू के शिष्य रज्जब ने लिखा है—

धुनी ग्रभे उत्पन्नो दादू योगन्द्रो महामुनिः।

उत्तम जोग धारनं, तस्मात् क्यं न्यानि कारणम्॥

पिंजारा रुई धुनने वाली जाति-विशेष है, इसलिए इसे धुनिया भी कहा जाता है। आचार्य क्षितिजमोहन सेन ने इनका सम्बन्ध बंगाल से बताया है। उनके अनुसार, दादू मुसलमान थे और उनका असली नाम 'दाऊद' था। दादू दयाल के जीवन की जानकारी दादू पंथी राघोदास 'भक्तमाल' और दादू के शिष्य जनगोपाल द्वारा रचित 'श्री दादू जन्म लीला परची' में मिलता है। इसके अलावा दादू की रचनाओं के अन्तःसाक्ष्य के माध्यम से भी, हम उनके जीवन और व्यक्तित्व के बारे में अनुमान लगा सकते हैं।

हिन्दू समाज में परम्परागत रूप से व्यक्ति का परिचय उसके कुल और उसकी जाति से दिया जाता रहा है। जात-पात की व्यवस्था मध्य काल में बहुत सुदृढ़ थी। अधिकांश निर्गुण संत कवि नीची समझी जाने वाली जातियों में हुए थे और वे जात-पात की व्यवस्था के विरोधी थे। लेकिन उनके अपमान का अभिजात समाज जात-पात का कट्टर समर्थक था। इस क्रूर यथार्थ को संत कवि जानते थे। फिर भी, उनके मन में अपनी जाति सम्बन्धी कोई हीन भावना नहीं थी। अतः उन्होंने न तो अपनी जाति को छिपाया और न इसे चरम सत्य मानकर ही पूजते रहे। कई बार स्वयं इनके जिज्ञासु भक्त भी यह पूछ ही लेते थे कि महाराज, आपकी जाति क्या है।

ऐसे जिज्ञासु भक्तों को सम्बोधित करते हुए दादू ने लिखा-

दादू कुल हमारे केसवा, सगात सिरजनहार।

जाति हमारी जगतगुर, परमेश्वर परिवार॥

दादू एक सगा संसार में, जिन हम सिरजे सोइ॥

मनसा बाचा क्रमनां, और न दूजा कोई॥

यहाँ दादू ने अपनी विचार प्रणाली को व्यक्त करते हुए कहा है कि मेरे सच्चे सम्बन्ध तो ईश्वर से हैं। और इसी सम्बन्ध से मेरा परिचय है। परिवार में अपने-पराये की भावना आ जाती है। दादू इसे संसार की 'माया' और संसार के 'मोह' की संज्ञा देते हैं। दादू अपने आपको इनसे मुक्त कर चुके थे, वह संसार में रहते हुए भी सांसारिक बंधनों को काट चुके थे। अतः निरर्थक जात-पात की लौकिक भाषा में अपना वास्तविक परिचय कैसे देते।

फिर भी, कई स्थानों पर उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है कि वे एक पिंजारा हैं। एक पद में उन्होंने लिखा है-

कौण आदमी कमीण विचारा, किसकों पूजै गरीब पिंजारा।।टेक  
में जन येक अनेक पसारा, भौजिल भरिया अधिक अपारा।।।

एक होड़ तौ कहि समझाऊँ, अनेक अरुझै क्यौँ सुरझाउं॥2  
 मैं हौँ निबल सबल ए सारे, क्यौँ करि पूजौँ बहुत पसारे॥3  
 पीव पुकारौ समझत नाही, दादू देषि दिसि जाही॥4

दादू ने इस पद में अपने आपको 'कमीण' कहकर पुकारा है। यह उन्होंने नम्रतावश ही नहीं कहा है। बल्कि सवर्णों द्वारा नीची समझी जाने वाली जातियों के व्यक्तियों को पुकारे जाने वाले नाम को प्रकट किया है और प्रकारान्तर से सवर्णों की समझ की अपज्ञापूर्वक निन्दा भी कर दी है।

दादू ने एक और पद में कहा है—

तहाँ मुझ कमीन की कौन चलावै।  
 जाका अजहूँ मुनि जन महल न पावै।टेक  
 स्यौँ विरंचि नारद मुनि गाबे, कौन भाँति करि निकटि बुलावै॥1  
 देवा सकल तेतीसौ कोडि, रहे दरबार ठाड़े कर जोड़ि॥2  
 सिध साधक रहे ल्यौ लाई, अजहूँ मोटे महल न पाइ॥3  
 सवतैं नीच मैं नांव न जानां, कहै दादू क्यौँ मिले सयाना॥4

इस पद में सामाजिक संवेदना और आध्यात्मिक अनुभव का मिश्रण हुआ है। दादू ईश्वर से मिलना चाहता है, लेकिन यह समाज बाधक बना हुआ है। ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर हों भी तो क्या होता है। समाज तो मुझे सबसे नीच और कमीन कहकर ही पुकारता है। यहाँ ईश्वर से न मिल पाने की निराशा के साथ-साथ सामाजिक अन्याय से आहत हृदय का दर्द भी अभिव्यक्त हो गया है। इस अन्तः साक्ष्य के आधार पर निस्संकोच रूप से यह कहा जा सकता है कि दादू पिंजारा थे। ब्राह्मण सिद्ध करने वाली किंवदंतियों का जन्म बाद में हुआ। वह मुसलमान थे या नहीं, या उन्होंने इस्लाम में नयी-नयी दीक्षा ले ली थी, जिसके कारण उनमें कुछ हिन्दू संस्कार बच गए थे, पर वह थे मुसलमान ही। इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। सम्भव है, यह उन पर आरोप लगाने के लिए कहा जाता रहा हो। निर्गुण संतों की वर्णाश्रम विरोधी चेतना के प्रभाव को खत्म करने के लिए उन पर इस्लाम के प्रभाव को प्रचारित किया जाता रहा है। इस्लाम चूँकि उस युग का राज-धर्म था, अतः इनको भी तत्कालीन सत्ताधारियों से जोड़कर इनके जन-आधार को संकुचित करने का प्रयास किया गया था। ऐसा अनुमान इसलिए लगाया जा सकता है क्योंकि यही आरोप कबीर पर भी लगाया गया था। उन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दू और तुर्क दोनों के मार्गों को गलत बताया है। उनके शिष्य हिन्दू और

मुसलमान दोनों थे। फिर भी, उनके इस्लाम में दीक्षित हो जाने का कोई तर्क-सम्मत कारण नहीं दिखायी देता।

दादू की पत्नी कौन थी, और उसका क्या नाम था, इसकी प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। इनके गरीबदास और मिस्कीनदास नामक दो पुत्र और नानीबाई तथा माताबाई नाम की दो पुत्रियाँ थीं। कुछ विद्वान् इस बात से असहमत हैं। उनके अनुसार ये उनके वरद पुत्र थे। कुछ लोगों के अनुसार ये उनके शिष्य थे। जनगोपाल के अनुसार दादू तीस वर्ष की अवस्था में सांभर में बस गये और दो वर्ष के बाद, उनके ज्येष्ठ पुत्र गरीबदास का जन्म हुआ।

## दादू के गुरु

दादू ने अपनी वाणी में गुरु की महिमा का गान तो बहुत किया है, लेकिन उनका कहीं नाम नहीं लिया है, जिनके ज्ञान के प्रभाव से दादू का व्यक्तित्व लौकिक बाधा-बंधनों को काट सका। दादू ने अपनी रचनाओं में गुरु की महिमा का विस्तार से बखान किया है। अतः यह जानना भी हमारे लिए आवश्यक है कि इनके गुरु कौन थे। लेकिन इस तथ्य की प्रामाणिक जानकारी अनुपलब्ध है। जन गोपाल की 'श्री दादू जन्म लीला परची' के अनुसार ग्यारह वर्ष की अवस्था में भगवान ने एक बुद्ध के रूप में दर्शन देकर इनसे एक पैसा माँगा। फिर इनसे प्रसन्न होकर इनके सिर पर हाथ रखा और इनके सारे शरीर का स्पर्श करते हुए इनके मुख में 'सरस पान' भी दिया। दादू पंथियों के अनुसार बुड्ढन नामक एक अज्ञात संत इनके गुरु थे। जन गोपाल के अनुसार बचपन के ग्यारह वर्ष बीत जाने के बाद, इन्हें बुड्ढे के रूप में गुरु के दर्शन हुए।

वे साक्षर थे या नहीं, इसके बारे में अब भी संदेह बना हुआ है। इनके गुरु, जो अब तक अज्ञात हैं, यदि वे थोड़े बहुत साक्षर रहे भी हों तो भी इतना निश्चित है कि इन्होंने धर्म और दर्शन का अध्ययन नहीं किया था। उनकी रचनाओं का वस्तुगत विश्लेषण इसकी पुष्टि नहीं करता कि उन्होंने धर्म का शास्त्रीय अध्ययन किया था। अन्य निर्गुण संतों की तरह इन्हें भी सत्संग से धर्म-आध्यात्म का ज्ञान मिला था। उन्होंने लिखा है—

हरि केवल एक अधारा, सो तारण तिरण हमारा।।टेक  
ना मैं पंडित पढ़ि गुनि जानौ, ना कुछ ग्यान विचारा।।1  
ना मैं आगम जौतिग जानौ, ना मुझ रूप सिंगारा।।2

यहाँ पढ़-लिखकर पंडित होने का तात्पर्य शास्त्रीय विद्या से लिया जा सकता है। मध्य युग में यह सुविधा सिर्फ सवर्णों को मिली हुई थी। यहाँ एक तरफ तो उन तथाकथित सवर्णों की स्थिति पर व्यंग्य किया गया है। दूसरी तरफ शास्त्रीय ज्ञान के अभाव की कसक को भी संप्रेषित किया गया है। धर्म-शास्त्रों के शास्त्रज्ञों ने निश्चय ही उनके ज्ञान को चुनौती दी थी और दादू जैसे शांत स्वभाव के संत ने इस कमी को स्वीकार कर लिया—

**आगम मो पै जाण्यौ न जाइ, इहै विमासनि जियडे माहि॥**

यह भी एक सर्वस्वीकृत तथ्य है कि अपनी रचनाओं का संग्रह स्वयं दादू दयाल ने नहीं बल्कि उनके शिष्यों ने किया था। इससे भी यह संदेह पुष्ट होता है कि शायद दादू साक्षर नहीं थे। भक्तिकाल के इन निर्गुण संतों की बड़ी विशेषता यह भी थी कि इनमें से अधिकांश संत गृहस्थ थे। वे सांसारिक मोह-माया को त्यागने का उपदेश देते थे। लेकिन संसार के त्याग का नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि संसार में रहते हुए भी संसार से ऊपर उठा जाए। संसार का बहिष्कार करने वाले तो कायर होते हैं। उन्हें मुक्ति कैसे मिल सकती है। सांभर से ही दादू दयाल की भक्ति-साधना आरम्भ होती है। यहीं से उन्होंने उपदेश देने शुरू किए थे और यहीं पर उन्होंने 'पर ब्रह्म सम्प्रदाय' की स्थापना की थी। जो दादू की मृत्यु के बाद 'दादू पंथ' कहा जाने लगा। दादू ने अपनी रचनाओं में अपने परिवार और पारिवारिक स्थिति का जिक्र किया है। उन्होंने लिखा है—

**दादू रोजी राम है, राजिक रिजक हमार।**

**दादू उस परसाद सौं, पोष्या सब परिवार॥**

**दादू साहिब मेरे कपड़े, साहिब मेरा पाण।**

**साहिब सिर का नाज है, साहिब प्यंड पराण॥**

**साईं सत संतोष दे, भाव भगति बेसासा।**

**सिदक सबूरी साच दे, माँगै दादू दासा॥**

ऐसा लगता है कि किसी जिज्ञासु व्यक्ति ने दादू से सीधा सवाल पूछा था कि आपका खाना-पीना कैसे चलता है। आप अपने परिवार का भरण-पोषण कैसे करते हैं। अर्थात् आपकी आय के साधन क्या हैं। यहाँ तो चारों तरफ अभाव ही अभाव दिखाई दे रहा है। इस जिज्ञासा को शांत करने के लिए दादू ने कहा कि राम ही मेरा रोजगार है, वही मेरी सम्पत्ति है, उसी राम के प्रसाद से परिवार का पोषण हो रहा है। इन पंक्तियों से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यहाँ पर ऐश्वर्य का बोलबाला नहीं, गरीबी का साम्राज्य है।

यह बात यहाँ रेखांकित करने के लायक है कि दादू को अपनी गरीबी से कोई शिकायत नहीं है। इसे सहज जीवन स्थिति मानकर उन्होंने स्वीकार कर लिया है। गरीबी की पीड़ा का बोध और उससे उत्पन्न आक्रोश दादू की रचनाओं में कहीं भी नहीं मिलता। यहाँ कवि राम पर निर्भर है, क्योंकि लौकिक स्थिति अनिश्चित है। जिसे ईश्वर ने माँ के गर्भ में बच्चे के लिए नौ महीने तक भोजन पहुँचा दिया है और जिसने जठराग्नि के बीच उसकी कोमल काया को बचाए रखा है, वह राम न कभी इतना निर्दयी हो सकता है और न इतना अशक्त ही कि वह व्यक्ति को इस संसार में भूख से मार डाले। अतः मनुष्य को खाने-पीने की अभाव की हाय-तौबा नहीं मचानी चाहिये। दादू के अनुसार अपने व्यक्तिगत जीवन की चिन्ता मनुष्य को नहीं करनी चाहिये, स्वयं राम अपने आप मनुष्य की चिन्ता करता है और करेगा। दादू ने एक साखी में कहा है—

**दादू हूंगा था सो होइ रहू या, और न होवै आइ।**

**लेणा था सो ले रहू या, और न लीया जाइ।**

दादू की इन पंक्तियों में सामाजिक जीवन भी व्यक्त हो गया है। इससे तत्कालीन राज्य व्यवस्था में जनता की अशक्ति प्रकट होती है। वह मानते हैं कि अपनी चिन्ता स्वयं करने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसका फल हानिकारक है। अतः दादू कहते हैं कि आदमी को अनुत्पादक चिन्ता नहीं करनी चाहिये। उस युग के भक्तों और संतों ने यह अनुभवपरक निष्कर्ष निकाला था कि आदमी को अपने भोजन-पानी की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वह तो मिल ही जायेगा। इससे अधिक सम्पत्ति संचित करने की इच्छा मनुष्य को निरन्तर कष्ट देती है। वह सम्पत्ति संचय तो नहीं कर पाता, उल्टे अपने भोजन से ही हाथ धो बैठता है। अतः संतोष धारण करके आदमी को राम का नाम लेते रहना चाहिये। अपने समय के समाज का सर्वेक्षण करते हुए दादू ने कहा है—

**दादू सब जग नीधना, धनवंता नहीं कोई।**

**सो धनवंता जाणिय, जाकै राम पदारथ होई।**

इसी सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए संत कवि मूलकदास ने कहा था कि अजगर किसी कि चाकरी नहीं करता और पक्षी कोई भी काम नहीं करते। फिर भी उनको आहार तो मिलता ही है। सब जीवों के दाता राम हैं। अतः मनुष्य को खाने-पीने के लिए अपनी आत्मा को गिरवी नहीं रखना चाहिये।

## निर्गुण संत

दादू दयाल ने अपने पूर्ववर्ती निर्गुण संतों का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया है। विशेष रूप से उन्होंने नामदेव, कबीर और रैदास के प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की है। कबीर तो दादू के आदर्श थे। उन्होंने एक पद में लिखा—

**अमृत राम रसाइण पीया, तार्थै अमर कबीरा कीया॥**

**राम राम कहि राम समानां, जन रैदास मिले भगवाना॥**

अर्थात् कबीर ने राम रस का पान किया था, इससे वह अमर हो गये। जन रैदास राम का नाम लेकर राम के समान हो गये। उनके पदों और साखियों का प्रभाव दादू-वाणी पर स्पष्ट देखा जा सकता है। कई साखियाँ तो थोड़ी बहुत हेर-फेर के बाद कबीर और दादू दोनों के नाम प्रचलित हैं। कबीर की रचनाओं पर भी पूर्ववर्ति नाथों और सिद्धों की रचनाओं का बहुत गहरा असर पड़ा है। अतः इनके साहित्य को देखकर यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इनका कौन-सा पद मौलिक है और कौन-सा नहीं।

## दादू के शिष्य

दादू के जीवन काल में ही उनके अनेक शिष्य बन चुके थे। उन्हें एक सूत्र में बाँधने के विचार से एक पृथक् सम्प्रदाय की स्थापना होनी चाहिये, यह विचार स्वयं दादू के मन में आ गया था। और इसलिए उन्होंने सांभर में 'पर ब्रह्म सम्प्रदाय' की स्थापना कर दी थी। दादू की मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने इस सम्प्रदाय को 'दादू पंथ' कहना शुरू कर दिया। आरम्भ में इनके कुल एक सौ बावन शिष्य माने जाते रहे। इनमें से एक सौ शिष्य (बीतरागी) थे और भगवत भजन में ही लगे रहे। बावन शिष्यों ने एकांत भगवत-चिन्तन के साथ लोक में ज्ञान के प्रचार-प्रसार का संगठनात्मक कार्य करना भी आवश्यक समझा। इन बावन शिष्यों के थांभे प्रचलित हुए। इनके थांभे अब भी अधिकतर राजस्थान, पंजाब व हरियाणा में हैं। इस क्षेत्र में अनेक स्थानों पर दादू-द्वारों की स्थापना की गई थी। उनके शिष्यों में गरीबदास, बधना, रज्जब, सुन्दरदास, जनगोपाल आदि प्रसिद्ध हुए। इनमें से अधिकतर संतों ने अपनी मौलिक रचनाएँ भी प्रस्तुत की थीं।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है—

दादू दयाल जी के देहान्त हो जाने के लगभग सौ वर्षों के अन्दर दादू पंथ के अनुयायियों की विचारधारा, वेष भूषा, रहन-सहन तथा उपासना प्रणाली में क्रमशः न्यूनाधिक परिवर्तन आरम्भ हो गया और यह बात प्रधान केन्द्र तक में दीखाई पड़ने लगी। नराणा के महन्तों का जैतराम जी (सं. 1750-1789) से अविवाहित रहा करना आवश्यक हो गया, दादू वाणी को उच्च स्थान पर पधारकर उसका पूजन आरम्भ हो गया। विधिवत आरती एवं भजनों का गान होने लगा, स्वर्गीय सदगुरु के प्रति परमात्मवाद भाव प्रदर्शित किया जाने लगा तथा साम्प्रदायिकता के भाव में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गयी। जब तक दादू दयाल जी के रज्जब जी, सुन्दरदास जी, बनवारीदास जी जैसे शिष्य जीवित रहे उनकी मूल बातों की ओर लोगों का ध्यान अधिक आकृष्ट रहा। किन्तु इनके भी मर जाने पर जब पृथक-पृथक् थांभों की प्रतिष्ठा हो चली और उक्त विचार धारा का दूर-दूर तक प्रचार हो चला तो, कुछ स्थानीय विशेषताओं के कारण और कुछ व्यक्तिगत मतभेदों के भी आ जाने से, उपसम्प्रदायों तक की सृष्टि आरम्भ हो गयी। दादू मत का मौलिक सार्वभौमरूप क्रमशः तिरोहित-सा होता चला गया और उसकी जगह एक न्यूनाधिक 'हिन्दू धर्म प्रभावित पंथ' निर्मित हो गया।

### दादू दयाल के विरोधी

दादू दयाल के जहाँ इतने शिष्य और समर्थक थे, वहाँ उनके विरोधी और निन्दक भी कम नहीं थे। दादू दयाल अपने निन्दकों को जानते थे। इसलिए एक पद में उन पर हल्का-सा व्यंग्य किया है। उसमें दादू ने कहा है कि निन्दक तो मुझे भाई के समान प्रिय हैं, जो करोड़ों कर्मों के बंधन को काटता है, जो स्वयं भवसागर में डूबकर भी दूसरे को बचा लेता है। वह उनको युगों तक जीवित रहने का आशीर्वाद भी देते हैं—

न्यंदक वावा बीर हमारा, बिन ही कौड़े वहे विचारा।टेक  
करम कोटि के कुसमल काटै, काज सवारे बिनही साटे॥1

आपण बूड़ै और कौं तारै, ऐसा प्रीतम पार उतारे॥2

जुगि जुगि जीवे निंदक मोरा, रामदेव तुम करौं निहोरा॥3

न्यंदक बपुरा पर उपगारी, नादू न्यंद्या करें हमारी॥4

दूसरी ओर दादू ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया है कि वे परनिंदा न किया करें, क्योंकि निंदा तो वह व्यक्ति करता है, जिनके हृदय में राम का निवास नहीं



है। दादू को बड़ा आश्चर्य होता है कि लोग कैसे निस्संकोच रूप से दूसरे की निंदा कर देते हैं।

न्यंदत सब लोग विचारा, हमकौं भावे राम पियारा॥

नरसंसै त्रिदोष रहताजे, तासनि कहत गये रे ये॥

निरवैरी निहकामी साध, तासिरि देत बहुत अपराध॥

लोहा कंचन एक समान, तासनि कहैं करत अभिमान॥

न्यंदा स्तुति एक करि तौले, तासौं कहैं अपवाद हि बोलें॥

दादू निंदा ताकौं भावैं, जाकै हिरदे राम न आवैं॥

दादू की रचनाओं का वस्तुगत अध्ययन करने से पता चलता है कि उनमें वाद-विवाद की प्रवृत्ति कम थी। उन्होंने खण्डन कम और मण्डन अधिक किया है। इससे लगता है कि उनका विरोध या तो उनकी अनुपस्थिति में होता था, जिसकी जानकारी उन्हें बाद में मिलती थी या वह स्वयं इतने शान्त स्वभाव के थे कि किसी विवाद में उलझे ही नहीं। निंदा-स्तुति को उन्होंने समभाव से ग्रहण कर लिया था। जो भी हो, उन्होंने अपने विरोधियों से बहस कम की है और समर्थकों को सलाह ज्यादा दी है।

### प्रमुख उपसम्प्रदाय

कालान्तर में दादू पंथ के पाँच प्रमुख उपसम्प्रदाय निर्मित हुए –

1. खालसा
2. विरक्त तपस्वी
3. उतरार्धे या स्थानधारी
4. खाकी
5. नागा।

इनके मानने वाले अलग-अलग स्थानों पर मिलते हैं। इनमें आपस में थोड़ी बहुत मत भिन्नता भी पायी जाती है। लेकिन सब उपसम्प्रदायों में दादू के महत्त्व को स्वीकार किया जाता है। संत दादू दयाल के विभिन्न स्मारकों का उल्लेख करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है-

संत दादू दयाल के स्मारक रूप विशिष्ट स्थानों में सर्वप्रथम स्थान करडाला व कल्याणपुर प्रसिद्ध है, जहाँ उन्होंने पहली बार काफी समय तक साधना की थी। इस बात का परिचय दिलाने के लिए वहाँ उनकी एक 'भजन शिला, वर्तमान है। वहाँ पर पहाड़ी के नीचे की ओर एक दादू द्वारा भी बना दिया

गया है जिसे, उसी कारण महत्त्व दिया जाता है। करडाला के अतिरिक्त सांभर में भी दादू जी की एक छतरी बनी हुई है। जो उनके रहने की पुरानी कुटिया का प्रतिनिधित्व करती है और पीछे वहाँ पर एक विशाल मन्दिर भी बना दिया गया है। सांभर के अनन्तर अधिक समय तक उनके निवास करने का स्थान आमेर समझा जाता है, जहाँ पर एक सुन्दर दादू द्वारा निर्मित है। परन्तु इन सभी से अधिक महत्त्व नराणे को दिया जाता है, जहाँ पर अभी तक वह खेजड़े का वृक्ष भी दिखलाया जाता है, जहाँ पर वे बैठा करते थे। उसी के समीप एक 'भजनशाला' है, तथा एक विशाल मन्दिर भी बना हुआ है। यहाँ का दादू द्वारा सर्वप्रथम माना जाता है। दादू जी का शव, जहाँ उनका देहान्त हो जाने पर, डाल दिया गया था, वह भराणे का स्थान भी उनके अन्तिम स्मारक के रूप में वर्तमान है। वहाँ पर भी एक चबूतरा बना दिया गया है और पूरा स्थान 'दादू खोल' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। कहते हैं कि यहीं कहीं पर उनके कुछ बाल, तूँबा, चोला तथा खड़ाऊँ भी अभी तक सुरक्षित है। कल्याणपुर, सांभर, आमेर, नराणा व भैराणा 'पंचतीर्थ' भी माने जाते हैं।

उनके स्मारक के रूप में दो मेले भी लगा करते हैं। इनमें से एक नराणे में प्रति वर्ष फागुन सुदी पाँच से लेकर एकादशी तक लगा करता है। जिनमें प्रायः सभी स्थानों के दादू पंथी इकट्ठे होते हैं। दूसरा मेला भैराणे में फागुन कृष्ण तीन से फागुन सुदी तीन तक चलता रहता है।

### दादू की रचनाएँ

1. साखी
2. पद्य
3. हरडेवानी
4. अंगवधू।

दादू ने कई साखी और पद्य लिखे हैं। दादू की रचनाओं का संग्रह उनके दो शिष्यों संतदास और जगनदास ने 'हरडेवानी' नाम से किया था। कालांतर में रज्जब ने इसका सम्पादन 'अंगवधू' नाम से किया। दादू की कविता जन सामान्य को ध्यान में रखकर लिखी गई है, अतएव सरल एवं सहज है। दादू भी कबीर की तरह अनुभव को ही प्रमाण मानते थे। दादू की रचनाओं में भगवान के प्रति प्रेम और व्याकुलता का भाव है। कबीर की तरह उन्होंने भी निर्गुण निराकार भगवान को वैयक्तिक भावनाओं का विषय बनाया है। उनकी रचनाओं में इस्लामी

साधना के शब्दों का बहुत प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा पश्चिमी राजस्थानी से प्रभावित हिन्दी है। इसमें अरबी-फारसी के काफी शब्द आए हैं, फिर भी वह सहज और सुगम है।

दादू दयाल की वाणी अंगवधू सटीक आचार्य चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी द्वारा सम्पादित है, जो अजमेर से प्रकाशित हुई है। यह कई हस्तलिपियों के अनुकरण के आधार पर सम्पादित की गई है। इसी क्रम में रज्जब ने इनकी वाणी को क्रमबद्ध तथा अलग-अलग भागों में विभाजित करके अंगवधू के नाम से इनकी वाणियों का संकलन किया। अंगवधू में हरडे वाणी की सभी त्रुटियों को दूर करने का प्रयास परिलक्षित होता है। अंगवधू को 37 भागों में विभाजित करने का प्रयास है। इसी के आधार पर ही अलग-अलग विद्वानों ने दादू वाणी को अपने-अपने ढंग से सम्पादित किया है। 59 दादू वाणी को कई लोगों ने सम्पादित किया है। जिनमें चन्द्रिका प्रसाद, बाबू बालेश्वरी प्रसाद, स्वामी नारायण दास, स्वामी जीवानंद, भारत भिक्षु आदि प्रमुख हैं। सन् 1907 में सुधाकर द्विवेदी ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा से इनकी रचनाओं को दादू दयाल की बानी के नाम से प्रकाशित करवाया। इन्होंने इसको दो भागों में विभाजित किया है। पहले खण्ड में दोहे तथा दूसरे में पद है, जिन्हें राग-रागिनियों के सन्दर्भों में वर्गीकृत किया है।

## मृत्यु

दादू दयाल की मृत्यु जेठ वदी अष्टमी शनिवार संवत् 1660 (सन् 1603 ई.) को हुई। जन्म स्थान के सम्बन्ध में मतभेद की गुंजाइश हो सकती है। लेकिन यह तय है कि इनकी मृत्यु अजमेर के निकट नराणा नामक गाँव में हुई। वहाँ 'दादू-द्वारा' बना हुआ है। इनके जन्म-दिन और मृत्यु के दिन वहाँ पर हर साल मेला लगता है। नराणा उनकी साधना भूमि भी रही है और समाधि भूमि भी। इस स्थान का पारम्परिक महत्त्व आज भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। दादू पंथी संतों के लिए यह स्थान तीर्थ के समान है। चूँकि इनके जन्म-स्थान के बारे में विशेष जानकारी नहीं मिलती, अतः दादू-पंथी लोग भी किसी स्थान विशेष की पूजा नहीं करते। अन्त में, ये नराणा (राजस्थान) में रहने लगे, जहाँ उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की। दादू की इच्छानुसार उनके शरीर को भैराना की पहाड़ी पर स्थित एक गुफा में रखा गया, जहाँ इन्हें समाधि दी गयी। इसी पहाड़ी को अब 'दादू खोल' कहा जाता है। जहाँ उनकी स्मृति में अब भी मेला लगा करता है।

## दादू का व्यक्तित्व

सन्त शिरोमणि दादूदयाल का आविर्भाव साहित्य और समाज की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यदि अन्याय और उत्पीड़न के समय में कोई समाज अपनी संवेदनशील चेतना के गर्भ से सन्त को जन्म नहीं दे पाता, तो वह अपने ही बोझ से डूब जाता है। सम-विषम का अन्तर्द्वन्द्व सामाजिक प्रक्रिया का आयाम है। यदि किसी समाज में संवेदनशीलता क्षीण हो जाये तो सम्भव है कि वहाँ सन्त का आविर्भाव न हो। उस दशा में समाज स्वयं टूट सकता है। उनका व्यक्तित्व केवल मानसिक गुण-दोष एवं प्रवृत्तियों का सार ही नहीं है बल्कि उनके चरित्र की विशेषताओं का आधार स्तम्भ था। वह उनके आन्तरिक जीवन का प्रकाशन है जिसमें व्यक्ति की प्रकृति, स्वभाव, अनुभवजन्य प्रवृत्तियाँ, चारित्रिक गुण-दोष, व्यक्तियों के प्रति व्यवहार, क्रिया-कलाप, रूप सौन्दर्य, ऐन्द्रिक क्षमताएँ, स्मरण शक्ति, कल्पना शक्ति, ज्ञान, तर्क-वितर्क, चिन्तन शक्ति, बौद्धिक और भावात्मक प्रवृत्तियों का समावेश होता है।

मनुष्य का व्यक्तित्व वह अमूल्य निधि है जिसे प्राप्त करके व्यक्ति स्वयं की संकुचित सामान्य व साधारण सीमाओं से परे होकर व्यापकता, असामान्यता व असाधारणता को सहज ही अपना लेता है। वह अमृत तुल्य आत्म निधि है जिसको पाकर व्यक्ति अमर हो जाता है। व्यक्तित्व ही एक ऐसी निधि है जिसकी सुन्दरता स्वयंमेव व्यक्ति की सीमित, असुन्दर व छोटे स्वरूप को असीम सुन्दरम् और महिमामय बनाकर उसको समाज के सामने प्रस्तुत करती है। सन्त के व्यक्तित्व की सार्थकता इसी पर आधारित है और किसी व्यक्तित्व को समझने के लिए उसके स्वभाव को जानना बहुत जरूरी है क्योंकि स्वभाव व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग है। स्वभाव से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए आत्मप्रेरक व्यक्तित्व ही जीवन के लिए संजीवनी समसिद्ध होती है। अतः दादू का स्वभाव और व्यक्तित्व भी तद्युगीन समाज के लिए संजीवनी सम ही था जहाँ उनके एक ओर उनके दैन्य व दयालु भाव एवं द्रवित प्रवृत्ति के कारण उनकी शिवमय प्रकृति का बोध होता है तो दूसरी ओर उनके सरल स्वभाव से उनके सत्यमय स्वरूप का परिचय होता है। अतः सन्त दादू के सत्य, शिव और सुन्दर स्वाभाविक स्वरूप का स्तुल्य व सराहनीय समन्वय तद्युगीन अस्तित्व के बहुमुखी संघर्ष में रत समस्त समाज के लिए संजीवनी-सम मणिकांचल योग के समान सौन्दर्यमय रूप धारण कर नवीन प्रेरणा का संदेश देता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी वाणियों में प्रेमभाव निरूपण अधिक सरस और गम्भीर माना है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है - दादू इतने अधिक दयालू थे कि लोग इन्हें दादूदयाल के नाम से पुकारने लगे।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दादू दयाल स्वयं प्रखर बुद्धि के महात्मा थे। उनके व्यक्तित्व और स्वभाव की अमिट छाप का कारण उनका दयामय स्वभाव और दयापूर्ण व्यक्तित्व था। इन सबकी वजह से उनके व्यक्तित्व को उभारता है। यह दयाभाव धर्म का वृक्ष है जिसे सत्य के शुद्ध जल द्वारा खींचा जाता है तभी वह फलता फूलता है। अतः ये इस दयाभाव के धर्म वृक्ष के अमर फलों का सेवन करना चाहते हैं। जिसमें सत्य, शील, संतोष के भाव स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहते हैं। दादू को दया की दयालुता और दयामय स्वभाव की एवं दयापूर्ण व्यक्तित्व की प्रतिमूर्ति कहा है।

## जीवन काल

कवि की रचनाओं की स्वरूप संरचना में जन्म काल की एक अहम् भूमिका होती है। सन्त एवं भक्त कवियों के जन्मकाल के सम्बन्ध में प्रमाणिक रूप से निर्णय करना सम्भव नहीं होता। ये अपने बारे में किसी प्रकार का कोई अवलोकन नहीं करते। यही कारण है कि अनेक भक्त सन्त कवियों की प्रमाणिक जीवनी को जानना अत्यन्त कठिन है। इनमें से कुछ की तो समकालीन सन्तों की परिचयात्मक या प्रषंसात्मक वर्णन मात्र से जानकारी सम्भव हो सकती है। परन्तु कुछ की सिर्फ अनेक किवदंतियों जन्मश्रुतियों या सम्प्रदायों या प्रषिष्यों की अतिष्योक्ति युक्त वर्णन से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस विषय परिस्थिति में अन्तः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य पर आधारित अनुसंधानात्मक वैज्ञानिक अध्ययन ही एक मात्र उपाय रह गया है, जिसके माध्यम से सन्देह के अन्धकार को दूर कर सत्य तथ्यों का सहारा ले, इन महापुरुषों की जीवनियों को प्रकाश में लाया जा सकता है।

## जीवन स्थली

संत दादू दयाल के जन्म स्थान के संदर्भ में अभी कुछ निर्णयात्मक ढंग से नहीं कहा जा सकता है। दादू के जन्म के सन्दर्भ में प्रचलित कुछ किवदंतियों के आधार पर दादू का जन्म स्थान अहमदाबाद माना जाता है। ऐसा विश्वास है

कि अहमदाबाद नगर में लोदी रामजी नागर ब्राह्मण थे। उनके कोई संतान नहीं थी। अतः संतान प्राप्ति के लिए संत महात्माओं की बड़ी प्रेम से सेवा करते थे, प्रातः साबरमती में रोज स्नानार्थ जाते थे, एक दिन आते हुए एक तपःपूत महात्मा द्वारा वरदान प्राप्त हुआ कि सुबह स्नान करने साबरमती नदी में जाने पर तुम्हें नदी प्रवाह में कमल के फूलों में क्रीड़ा करते हुए एक दिव्य ब्रह्मज्ञानी बालक की प्राप्ति होगी, जैसा कि सद्गुण सागर के उद्धरण से स्पष्ट है—

**गैबी संत मिल्यो तिहि बारा, करी बनिती चरन मंझारा।**

**मांग प्राणि यह वचन उचारा, तू चाहे तो देऊं सारा।**

**तू चाहे सो देहूँ तोई, भक्ति मुक्ति कामना कोई।**

इस प्रकार संत के मिलने पर वरदान रूप में पुत्र प्राप्ति मांगी जिसके लिए जनगोपालजी कद्यत जन्मलीला में लिखा है—

**सुन लो एक अरज हमारी, पुत्र बिना दुःख है भारी।**

**संत कद्यपा कर गिरा उचारी, जाह नदी तट बड़े संवारी।**

**दियो पुत्र तेहि ब्रह्म विचारी, देवे कुल को केई तारी।**

**बड़े संवार नदी तट जावै, बालक अधर सो तिरते आवै।**

**गोद माहि तब लेकर आयो, गैब दूध माता के पायो।**

**इहि विधि स्वामी जन्म जुलिया, लोदीराम पुत्र यों किया।**

पाशचात्य विद्वान नाइकल मैकिनकल ने भी अपनी पुस्तक में इसी मत का समर्थन किया है। सन्त दादू दयाल का जन्म अहमदाबाद में हुआ था या नहीं, यह निर्णय करना हमारे कार्य का अंग नहीं है, उनका जन्म कहीं भी हुआ हो लेकिन उनकी जीवन साधना उनके जन्म स्थान से प्रारंभ नहीं होती। ऐसा माना जाता है कि अपनी वय के 18वें वर्ष में महान विभूति दादू ने अहमदाबाद छोड़ दिया और छः साल तक वे परिव्राजक की तरह जगह-जगह घूमते रहे और 26 वर्ष की आयु में सांभर आए। यहीं से उन्होंने अपना सदुपदेश देना प्रारम्भ किया। इस स्थिति में भी दादू सांभर में ही टिक कर नहीं रहते थे। 32वें वर्ष तक सांभर को अपना केन्द्र बनाने के बाद दादू आम्बेर आ गए। 13-14 वर्ष के लिए आम्बेर दादू के ज्ञान प्रसार के परिवेश का केन्द्र रहा। अतः इस अवधि में भी दादू आम्बेर में स्थिर होकर नहीं बैठे। सन् 1645-46 में 44-45 वर्ष की आयु में दादू ने अपने ज्ञान का प्रचार करने के लिए बड़ी यात्रा आरंभ की जो 10-12 वर्ष तक निरन्तर चलती रही। 12 वर्ष की इस अवधि में सन् 1655 में दादू नराणा आ गए। 59 वे वर्ष में पुनः नराणा आकर दादू ने इस भौतिक शरीर को त्याग दिया।

## दादूपन्थ

दादू के जीवन में ही जितनी बड़ी संख्या में शिष्य-प्रशिष्य दादू के बने, सम्भवतः उतने शिष्य किसी अन्य संत के नहीं बनें। दादू के 52 मुख्य शिष्य बनें। दादूपंथी संतों में एक बहुत बड़ी संख्या पढ़े-लिखे संतों की है। जगजीवनदास जैसे शास्त्रार्थी, सुन्दरदास जैसे प्रकाण्ड शास्त्र पण्डित और साधु निश्चलदास जैसे दार्शनिक दादूपंथी ही थे। संत साहित्य के संरक्षण और संवर्धन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य दादूपंथियों ने किया। इन संतों ने अपने गुरु की वाणियों को संरक्षित तो किया ही, पूर्ववर्ती तमाम संतों की वाणियों का संरक्षण भी किया।

श्री गुरुदेव का अंग संत दादू दयाल जी  
दादू नमो नमो निरंजन, नमस्कार गुरु देवतरू।  
वन्दनं सर्व साधावा, प्रणामं पारंगतरू॥1॥  
परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरंजनं।  
निराकारं निर्मलं, तस्य दादू वन्दनं॥2॥  
दादू गैब माँहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद।  
मस्तक मेरे कर धारया, दख्या अगम अगाध॥3॥  
दादू सदगुरु सहज में, कीया बहु उपकार।  
निर्धन अनवैत कर लिया, गुरु मिलिया दातार॥4॥  
दादू सदगुरु सूं सहजै मिल्या, लीया कंठ लगाइ।  
दया भई दयालु की, तब दीपक दिया जगाइ॥5॥  
दादू देखु दयालु की, गुरु दिखाई बाट।  
ताला कूंची लाइ करि, खोले सबै कपाट॥6॥  
दादू सदगुरु अंजन बाहिकर, नैन पटल सब खोले।  
बहरे कानों सुनने लागे, गूंगे मुख सों बोले॥7॥  
सदगुरु दाता जीव का, श्रवण शीश कर नैन।  
तन मन सौँज सँवारि सब, मुख रसना अरु बैन॥8॥  
राम नाम उपदेश करि, अगम गवन यहु सैन।  
दादू सदगुरु सब दिया, आप मिलाये औन॥9॥  
सदगुरु कीया फेरिकर, मन का औरै रूप।  
दादू पंचों पलट कर, कौंसे भये अनूप॥10॥  
साचा सदगुरु जे मिले, सब साज सँवारै।

दादू नाव चढ़ाय कर, ले पार उतारै॥11॥  
 सदगुरु पशु मानुष करै, मानुष तैं सिद्ध सोइ।  
 दादू सिद्ध तैं देवता, देव निरंजन होइ॥12॥  
 दादू काढ़े काल मुख, अंधो लोचन देय।  
 दादू ऐसा गुरु मिल्या, जीव ब्रह्म कर लेय॥13॥  
 दादू काढ़े काल मुख, श्रवणहु शब्द सुनाय।  
 दादू ऐसा गुरु मिल्या, मृतक लिये जिवाय॥14॥  
 दादू काढ़े काल मुख, गूंगे लिये बुलाय।  
 दादू ऐसा गुरु मिल्या, सुख में रहे समाय॥15॥  
 दादू काढ़े काल मुख, महर दया कर आय।  
 दादू ऐसा गुरु मिल्या, महिमा कही न जाय॥16॥  
 सदगुरु काढ़े केश गहि, डूबत इहि संसार।  
 दादू नाव चढ़ायकरि, कीये पैली पार॥17॥  
 भव सागर में डूबतां, सदगुरु काढ़े आय।  
 दादू खेवट गुरु मिल्या, लीये नाव चढ़ाय॥18॥  
 दादू उस गुरुदेव की, मैं बलिहारी जाउं।  
 जहाँ आसन अमर अलेख था, ले राखे उस ठाउं॥19॥  
 आतम माँहीं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान।  
 कृत्रिम जाय उलंघि कर, जहाँ निरंजन थान॥20॥  
 आत्म बोधा बंझ का बेटा, गुरुमुख उपजै आय।  
 दादू पंगुल पंच बिन, जहाँ राम तहँ जाय॥21॥  
 साचा सहजै ले मिले, शब्द गुरु का ज्ञान।  
 दादू हमकू ले चल्या, जहाँ प्रीतम का स्थान॥22॥  
 दादू शब्द विचार करि, लागि रहै मन लाय।  
 ज्ञान गहँ गुरुदेव का, दादू सहज समाय॥23॥  
 दादू सदगुरु शब्द सुनाय कर, भावै जीव जगाय।  
 भावै अन्तर आप कहि, अपने अंग लगाय॥24॥  
 दादू बाहर सारा देखिए, भीतर कीया चूर।  
 सदगुरु शब्दों मारिया, जाण न पावे दूर॥25॥  
 दादू सदगुरु मारे शब्द सों, निरखि निरखि निज ठौर।  
 राम अकेला रह गया, चित्ता न आवे और॥26॥



दादू हम को सुख भया, साधा शब्द गुरु ज्ञान।  
 सुधि बुधि सोधी समझि करि, पाया पद निर्वान॥27॥  
 दादू शब्द बाण गुरु साधु के, दूर दिशंतर जाय।  
 जिहिं लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाय॥28॥  
 सदगुरु शब्द मुख सों कह्या, क्या नेडे क्या दूर।  
 दादू सिख श्रवणों सुन्या, सुमिरन लागी सूर॥29॥  
 शब्द दूधा, घृत राम रस, मथ कर काढ़े कोइ।  
 दादू गुरु गोविन्द बिन, घट-घट समझ न होइ॥30॥  
 शब्द दूधा घृत राम रस, कोइ साधु बिलोवणहार।  
 दादू अमृत काढ़ ले, गुरुमुख गहै विचार॥31॥  
 घीव दूधा में रम रह्या, व्यापक सब ही ठौर।  
 दादू बकता बहुत है, मथि काढ़े ते और॥32॥  
 कामधोनु घट जीव है, दिन-दिन दुर्बल होय।  
 गोरू ज्ञान न उपजै, मथि नहिं खाया सोय॥33॥  
 साचा समरथ गुरु मिल्या, तिन तत दिया बताय।  
 दादू मोटा महाबली, घट घृत मथिकर खाय॥34॥  
 मथि करि दीपक कीजिए, सब घट भया प्रकास।  
 दादू दीया हाथ करि, गया निरंजन पास॥35॥  
 दीयै दीया कीजिए, गुरुमुख मारग जाय।  
 दादू अपने पीव का, दरशन देखै आय॥36॥  
 दादू दीया है भला, दिया करो सब कोइ।  
 घर में धारया न पाइये, जे कर दिया न होइ॥37॥  
 दादू दीये का गुण ते लहैं, दीया मोटी बात।  
 दीया जग में चाँदणा, दीया चाले साथ॥38॥  
 निर्मल गुरु का ज्ञान गहि, निर्मल भक्ति विचार।  
 निर्मल पाया प्रेम रस, छूटे सकल विकार॥39॥  
 निर्मल तन मन आत्मा, निर्मल मनसा सार।  
 निर्मल प्राणी पंच करि, दादू लंघे पार॥40॥  
 परापरी पासै रहै, कोई न जाणै ताहि।  
 सदगुरु दिया दिखाय करि, दादू रह्या ल्यौ लाया॥41॥  
 जिन हम सिरजे सो कहाँ, सदगुरु देहु दिखाय।

दादू दिल अरवाह का, तहँ मालिक ल्यौ लाय॥42॥  
 मुझ ही में मेरा धाणी, पड़दा खोल दिखाय।  
 आतम सौं परमात्मा, परगट आणि मिलाय॥43॥  
 भरि-भरि प्याला प्रेम रस, अपने हाथ पिलाय।  
 सदगुरु के सदिकै किया, दादू बलि-बलि जाय॥44॥  
 सरवर भरिया दह दिशा, पंखी प्यासा जाय।  
 दादू गुरु परसाद बिन, क्यों जल पीवे आय॥45॥  
 मान-सरोवर माहि जल, प्यासा पीवे आय।  
 दादू दोष न दीजिए, घर-घर कहण न जाय॥46॥  
 दादू गुरु गरवा मिल्या, ताथैं सब गम होय।  
 लोहा पारस परसतां, सहज समाना सोय॥47॥  
 दीन गरीबी गहि रह्या, गरवा गुरु गंभीर।  
 सूक्ष्म शीतल सुरति मति, सहज दया गुरु धीर॥48॥  
 सोधी दाता पलक में, तिरै तिरावण जोग।  
 दादू ऐसा परम गुरु, पाया किहिं संजोग॥49॥  
 दादू सदगुरु ऐसा कीजिए, राम रस माता।  
 पार उतारे पलक में, दर्शन का दाता॥50॥  
 देवे किरका दरद का, टूटा जोड़े तार।  
 दादू सांधो सुरति को, सो गुरु पीर हमार॥51॥  
 दादू घायल होय रहे, सदगुरु के मारे।  
 दादू अंग लगाय करि, भव सागर तारे॥52॥  
 दादू साचा गुरु मिल्या, साचा दिया दिखाइ।  
 साचे को साचा मिल्या, साचा रह्या समाइ॥53॥  
 साचा सदगुरु सोधिले, साँचे लीजे साधा।  
 साचा साहिब सोधि कर, दादू भक्ति अगाध॥54॥  
 सन्मुख सदगुरु साधु सौं, साँई सौं रता।  
 दादू प्याला प्रेम का, महा रस माता॥55॥  
 साँई सौं साचा रहै, सदगुरु सौं शूरा।  
 साधु सौं सन्मुख रहै, सो दादू पूरा॥56॥  
 सदगुरु मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भण्डार।  
 दादू सहजैं देखिए, साहिब का दीदार॥57॥

दादू साईं सद्गुरु सेविये, भक्ति मुक्ति फल होय।  
 अमर अभय पद पाइये, काल न लागे कोय॥58॥  
 इक लख चन्दा आण घर, सूरज कोटि मिलाय।  
 दादू गुरु गोविंद बिन, तो भी तिमर न जाय॥59॥  
 अनेक चंद उदय करे, असंख्य सूर प्रकास।  
 एक निरंजन नाम बिन, दादू नहीं उजास॥60॥  
 दादू कदि यहु आपा जायगा, कदि यहु बिसरे और।  
 कदि यहु सूक्ष्म होयगा, कदि यहु पावे ठौर॥61॥  
 विषम दुहेला जीव को, सद्गुरु तैं आसान।  
 जब दरवे तब पाइये, नेड़ा ही अस्थान॥62॥  
 दादू नैन न देखे नैन को, अन्तर भी कुछ नाँहि।  
 सद्गुरु दर्पण कर दिया, अरस परस मिल माँहि॥63॥  
 घट-घट राम रतन है, दादू लखे न कोइ।  
 सद्गुरु शब्दों पाइये, सहजै ही गम होइ॥64॥  
 जब ही कर दीपक दिया, तब सब सूझन लाग।  
 यूँ दादू गुरु ज्ञान तैं, राम कहत जन जाग॥65॥  
 दादू मन माला तहाँ फेरिये, जहाँ दिवस न परसे रात।  
 तहाँ गुरु बानाँ दिया, सहजै जपिये तात॥66॥  
 दादू मन माला तहाँ फेरिये, जहाँ प्रीतम बैठे पास।  
 आगम गुरु तैं गम भया, पाया नूर निवास॥67॥  
 दादू मन माला तहाँ फेरिये, जहाँ आपै एक अनन्त।  
 सहजै सो सद्गुरु मिल्या, जुग-जुग फाग बसन्त॥68॥  
 दादू सद्गुरु माला मन दिया, पवन सुरति सँ पोइ।  
 बिन हाथों निश दिन जपै, परम जाप यूँ होइ॥69॥  
 दादू मन फकीर मांही हुआ, भीतर लीया भेख।  
 शब्द गहै गुरुदेव का, माँगे भीख अलेख॥70॥  
 दादू मन फकीर सद्गुरु किया, कहि समझाया ज्ञान।  
 निश्चल आसन बैस कर, अकल पुरुष का ध्यान॥71॥  
 दादू मन फकीर जग तैं रह्या, सद्गुरु लीया लाय।  
 अहनिशि लागा एक सौँ, सहज शून्य रस खाय॥72॥  
 दादू मन फकीर ऐसे भया, सद्गुरु के परसाद।

जहाँ का था लागा तहाँ, छूटे वाद विवाद॥73॥  
 ना घर रह्या न वन गया, ना कुछ किया कलेश।  
 दादू मनहीं मन मिल्या, सदगुरु के उपदेश॥74॥  
 दादू यहु मसीत यहु देहुरा, सदगुरु दिया दिखाया।  
 भीतरि सेवा बन्दगी, बाहर काहे जाय॥75॥  
 दादू मंझे चेला मंझे गुरु, मंझे ही उपदेश।  
 बाहरि दूढ़ैं बावरे, जटा बधाये केश॥76॥  
 मन का मस्तक मूडिये, काम-क्रोध के केश।  
 दादू विषै विकार सब, सदगुरु के उपदेश॥77॥  
 दादू पड़दा भरम का, रह्या सकल घट छाय।  
 गुरु गोविन्द कृपा करें, तो सहजै ही मिट जाय॥78॥  
 जिहिं मत साधु उद्धरैं, सो मत लीया शोध।  
 मन लै मारग मूल गहि, यह सदगुरु का परमोध॥79॥  
 दादू सोई मारग मन गह्या, जिहिं मारग मिलिये जाय।  
 वेद कुरानों ना कह्या, सो गुरु दिया दिखाय॥80॥  
 मन भुवंग यहु विष भरया, निर्विष क्यों ही न होइ।  
 दादू मिल्या गुरु गारुड़ी, निर्विष कीया सोइ॥81॥  
 एता कीजे आप तैं, तन मन उनमनि लाय।  
 पंच समाधी राखिये, दूजा सहज सुभाय॥82॥  
 दादू जीव जंजालों पड़ गया, उलझा नौ मण सूत।  
 कोई इक सुलझे सावधान, गुरु बाइक अवधूत॥83॥  
 चंचल चहुँ दिशि जात है, गुरु बाइक सों बंधि।  
 दादू संगति साधु की, पार-ब्रह्म सों संधि॥84॥  
 गुरु अंकुश माने नहीं, उदमद माता अंधा।  
 दादू मन चेतै नहीं, काल न देखै फंधा॥85॥  
 दादू मारया बिन माने नहीं, यह मन हरि की आन।  
 ज्ञान खड़ग गुरुदेव का, ता संग सदा सुजान॥86॥  
 जहाँ तैं मन उठि चले, फेरि तहाँ ही राखि।  
 तहँ दादू लै लीन करि, साधु कहें गुरु साखि॥87॥  
 दादू मन ही सूं मल ऊपजै, मन ही सूं मल धोय।  
 सीख चले गुरु साधु की, तो तू निर्मल होय॥88॥

दादू कच्छब अपने कर लिये, मन इन्द्रिय निजठौर।  
 नाम निरंजन लागि रहु, प्राणी परहरि और।।89।।  
 मन के मतै सब कोइ खेले, गुरुमुख विरला कोइ।  
 दादू मन की माने नहीं, सदगुरु का शिष्य सोइ।।90।।  
 सब जीवों को मन ठगै, मन को विरला कोइ।  
 दादू गुरु के ज्ञान सौं, साईं सन्मुख होइ।।91।।  
 दादू एक सूं लै लीन होना, सबै सयानप येह।  
 सदगुरु साधु कहत हैं, परम तत्त्व जप लेह।।92।।  
 सदगुरु शब्द विवेक बिन, संयम रहा न जाय।  
 दादू ज्ञान विचार बिन, विषय हलाहल खाय।।93।।  
 घर-घर घट कोल्हू चले, अमीं महा रस जाय।  
 दादू गुरु के ज्ञान बिन, विषय हलाहल खाय।।94।।  
 सदगुरु शब्द उलंघ करि, जिन कोई शिष्य जाय।  
 दादू पग-पग काल है, जहाँ जाइ तहँ खाय।।94।।  
 सदगुरु बरजे शिष्य करे, क्यों कर बंचे काल।  
 दह दिशि देखत बहि गया, पाणी फोड़ी पाल।।96।।  
 दादू सदगुरु कहै सु शिष्य करे, सब सिद्ध कारजहोय।  
 अमर अभय पद पाइये, काल न लागे कोय।।97।।  
 दादू जे साहिब को भावै नहीं, सो हम तैं जिन होइ।  
 सदगुरु लाजे आपणा, साधु न माने कोइ।।98।।  
 दादू 'हू' की ठाहर 'है' कहो, 'तन' की ठाहर 'तू'।  
 श्री' की ठाहर 'जी' कहो, ज्ञान गुरु का यूँ।।99।।  
 दादू पंच स्वादी पंच दिशि, पंचे पंचों बाट।  
 तब लग कह्या न कीजिये, गह गुरु दिखाया घाट।।100।।  
 दादू पंचों एक मत, पंचों पूरया साथ।  
 पंचों मिल सन्मुख भये, तब पंचों गुरु की बाट।।101।।  
 दादू ताता लोहा तिणे सूँ, क्यों कर पकडया जाय।  
 गहन गति सूझे नहीं, गुरु नहीं बूझे आय।।102।।  
 दादू अवगुण गुण कर माने गुरु के, सोई शिष्य सुजान।  
 सदगुरु अवगुण क्यों करे, समझे सोई सयान।।103।।  
 सोने सेती वैर क्या, मारे घण के घाइ।

दादू काट कलंक सब, राखे कंठ लगाइ॥104॥  
 पाणी माँही राखिये, कनक कलंक न जाइ।  
 दादू गुरु के ज्ञान सौं, ताइ अग्नि में बाहि॥105॥  
 दादू माँही मीठा हेत कर, ऊपर कड़वा राखि।  
 सदगुरु शिष्य को सीख दे, सब साधू की साखि॥106॥  
 दादू कहे शिष्य भरोसे आपणै, ह्वै बोली हुसियार।  
 कहेगा सो बहेगा, हम पहली करै पुकार॥107॥  
 दादू सदगुरु कहैं सु कीजिये, जे तू शिष्य सुजान।  
 जहाँ लाया तहाँ लाग रहु, बूझे कहाँ अजान॥108॥  
 गुरु पहले मन सौं कहैं, पीछे नैन की सैन।  
 दादू शिष्य समझैं नहीं, कहि समझावै बैन॥109॥  
 कहे लखे सो मानवी, सैन लखे सो साध।  
 मन की लखे सु देवता, दादू अगम अगाध॥110॥  
 दादू कहि-कहि मेरी जीभ रही, सुन-सुन तेरे कान।  
 सदगुरु बपुरा क्या करे, जो चेला मूढ़ अजान॥111॥  
 एक शब्द सब कुछ कह्या, सदगुरु शिष्य समझाय।  
 जहँ लाया तहँ लागे नहीं, फिर-फिर बूझे आय॥112॥  
 ज्ञान लिया सब सीख सुनि, मन का मैल न जाय।  
 गुरु बिचारा क्या करे, शिष्य विषय हलाहल खाय॥113॥  
 सदगुरु की समझे नहीं, अपने उपजे नाँहि।  
 तो दादू क्या कीजिए, बुरी व्यथा मन माँहि॥114॥  
 गुरु अपंग पग पंख बिन, शिष्य शाखा का भार।  
 दादू खेवट नाव बिन, क्यों उतरेंगे पार॥115॥  
 दादू संशा जीव का, शिष्य शाखा का साल।  
 दोनों को भारी पड़ी, होगा कौन हवाल॥116॥  
 अंधो अंधा मिल चले, दादू बन्धा कतार।  
 कूप पड़े हम देखते, अंधो अंधा लार॥117॥  
 सोधी नहीं शरीर की, औरों को उपदेश।  
 दादू अचरज देखिया, ये जाँयेंगे किस देश॥118॥  
 सोधी नहीं शरीर की, कहैं अगम की बात।  
 जान कहावें बापुड़े, आयुधा लीये हाथ॥119॥

दादू माया माहैं काढ़ि कर, फिर माया में दीन्ह।  
 दोऊ जन समझै नहीं, एको काज न कीन्ह॥120॥  
 दादू कहै सो गुरु किस काम का, गहि भरमावे आन।  
 तत्तव बतावे निर्मला, सो गुरु साधु सुजान॥121॥  
 तूं मेरा हूँ तेरा, गुरु शिष्य कीया मंत।  
 दोनों भूले जात हैं, दादू विसरा कंत॥122॥  
 दुहि-दुहि पीवे ग्वाल गुरु, शिष्य है छेली गाय।  
 यह अवसर यों ही गया, दादू कहि समझाय॥123॥  
 शिष गोरू गुरु ग्वाल है, रक्षा कर कर लेया।  
 दादू राखे जतन करि, आनि धाणी को देया॥124॥  
 झूठे अंधो गुरु घणे, भरम दिढ़ावें आय।  
 दादू साचा गुरु मिले, जीव ब्रह्म हो जाय॥125॥  
 झूठे अंधो गुरु घणे, बंधो विषय विकार।  
 दादू साचा गुरु मिले, सन्मुख सिरजनहार॥126॥  
 झूठे अंधो गुरु घणे, भरम दिढ़ावें काम।  
 बंधो माया मोह सों, दादू मुख सों राम॥127॥  
 झूठे अंधो गुरु घणे, भटकैं घर-घर बार।  
 कारज को सीझे नहीं, दादू माथे मार॥128॥  
 दादू भक्त कहावें आपको, भक्ति न जाने भेव।  
 सपने हीं समझे नहीं, कहाँ बसे गुरुदेव॥129॥  
 भरम करम जग बंधिया, पंडित दिया भुलाय।  
 दादू सद्गुरु ना मिले, मारग देइ दिखाय॥130॥  
 दादू पंथ बतावें पाप का, भरम कर्म विश्वास।  
 निकट निरंजन जे रहै, क्यों न बतावें तास॥131॥  
 दादू आपा उरझे उरझिया, दीसे सब संसार।  
 आपा सुरझे सुरझिया, यहु ज्ञान विचार॥132॥  
 साधु का अंग निर्मला, तामें मल न समाया।  
 परम गुरु परगट कहैं, तातैं दादू ताय॥133॥  
 राम नाम गुरु शब्द सों, रे मन पेलि भरम।  
 निहकरमी सूं मन मिल्या, दादू काटि करम॥134॥  
 दादू बिन पायन का पंथ है, क्यों कर पहुँचे प्रान।

विकट घाट औघट खरे, माँहि शिखर असमान॥135॥  
 मन ताजी चेतन चढे, ल्यौ की करे लगाम।  
 शब्द गुरु का ताजणा, कोई पहुँचे साधु सुजान॥136॥  
 साधों सुमिरण सो कहा, जिहँ सुमिरण आपा भूल।  
 दादू गहि गम्भीर गुरु, चेतन आनँद मूल॥137॥  
 दादू आप सवारथ सब सगे, प्राण सनेही नाँहि।  
 प्राण सनेही राम है, कै साधु कलि माँहि॥138॥  
 सुख का साथी जगत् सब, दुख का नाहीं कोइ।  
 दुख का साथी सांइया, दादू सदगुरु होइ॥139॥  
 सगे हमारे साधु हैं, शिर पर सिरजनहार।  
 दादू सदगुरु सो सगा, दूजा धांधा विकार॥140॥  
 दादू के दूजा नहीं, एकै आतम राम।  
 सदगुरु शिर पर साधु सब, प्रेम भक्ति विश्राम॥141॥  
 दादू शुधा बुधा आत्मा, सदगुरु परसे आया।  
 दादू भृंगी कीट ज्यौं, देखत ही हो जाया॥142॥  
 दादू भृंगी ज्यौं, सदगुरु सेती होया।  
 आप सरीखे कर लिये, दूजा नाँही कोया॥143॥  
 दादू कच्छप राखे दृष्टि में कुंजों के मन माँहिं।  
 सदगुरु राखे आपणा, दूजा कोई नाँहिं॥144॥  
 बच्चों के माता पिता, दूजा नाँहीं कोइ।  
 दादू निपजे भाव सूं, सदगुरु के घट होइ॥145॥  
 एकै शब्द अनन्त शिष्य, जब सदगुरु बोलै।  
 दादू जड़े कपाट सब, दे कूँची खोलै॥146॥  
 बिन ही किये होय सब, सन्मुख सिरजनहार।  
 दादू कर कर को मरे, शिष्य शाखा शिर भार॥147॥  
 सूरज सन्मुख आरसी, पावक किया प्रकास।  
 दादू साँई साधु बिच, सहजै निपजै दास॥148॥  
 दादू पंचों ये परमोधा ले, इनहीं को उपदेश।  
 यहु मन अपणा हाथ कर, तो चेला सब देश॥149॥  
 अमर भये गुरु ज्ञान सौं, केते इहिं कलि माँहि।  
 दादू गुरु के ज्ञान बिन, केते मरि-मरि जाँहि॥150॥



औषधि खाइ न पछ रहे, विषम व्याधि क्यों जाय।

दादू रोगी बावरा, दोष वैद्य को लाया॥151॥

वैद्य व्यथा कहे देखि कर, रोगी रहे रिसाय।

मन माँही लीये रहै, दादू व्याधि न जाय॥152॥

दादू वैद्य बिचारा क्या करे, रोगी रहे न साँच।

खाटा मीठा चरपरा, माँगे मेरा वाच॥153॥

दुर्लभ दरशन साधु का, दुर्लभ गुरु उपदेश।

दुर्लभ करिबा कठिन है, दुर्लभ परस अलेख॥154॥

दादू अविचल मंत्र, अमर मंत्र अखै मंत्र, अभय मंत्र, राम मंत्र, निजसार।  
संजीवन मंत्र, सबीरज मंत्र, सुंदर मंत्र, शिरोमणिमंत्र, निर्मल मंत्र, निराकार।

अलख मंत्र, अकल मंत्र, अगाधा मंत्र, अपार मंत्र, अनंत मंत्र, राया।

नूर मंत्र, तेज मंत्र, ज्योति मंत्र, प्रकाश मंत्र, परम मंत्र, पाया॥155॥

दादू सब ही गुरु किये, पशु पंखी बन राय।

तीन लोक गुण पंच सौं, सब ही माँहि खुदाय॥156॥

जो पहली सद्गुरु कह्या, सो नैनहुँ देख्या आइ।

अरस परस मिलि एक रस, दादू रहे समाइ॥157॥

॥इति गुरुदेव का अंग सम्पूर्ण॥

# 7

---

## गुरु नानक

---

नानक (कार्तिक पूर्णिमा 1469–22 सितंबर 1539) सिखों के प्रथम (आदि) गुरु हैं। इनके अनुयायी इन्हें नानक, नानक देव जी, बाबा नानक और नानकशाह नामों से संबोधित करते हैं। नानक अपने व्यक्तित्व में दार्शनिक, योगी, गृहस्थ, धर्मसुधारक, समाजसुधारक, कवि, देशभक्त और विश्वबंधु – सभी के गुण समेटे हुए थे।

### ननकाना साहिब

इनका जन्म रावी नदी के किनारे स्थित तलवंडी नामक गाँव में कार्तिकी पूर्णिमा को एक खत्रीकुल में हुआ था। तलवंडी पाकिस्तान में पंजाब प्रान्त का एक शहर है। कुछ विद्वान इनकी जन्मतिथि 15 अप्रैल, 1469 मानते हैं। किंतु प्रचलित तिथि कार्तिक पूर्णिमा ही है, जो अक्टूबर–नवंबर में दीवाली के 15 दिन बाद पड़ती है।

इनके पिता का नाम मेहता कालू जी था, माता का नाम तृप्ता देवी था। तलवंडी का नाम आगे चलकर नानक के नाम पर ननकाना पड़ गया। इनकी बहन का नाम नानकी था।

गुरु नानक (जन्म-15 अप्रैल, 1469, तलवंडी, पंजाब, मृत्यु- 22 सितंबर, 1539, भारत) सिक्खों के प्रथम गुरु (आदि गुरु) थे। इनके अनुयायी इन्हें 'गुरु नानक', 'बाबा नानक' और 'नानकशाह' नामों से संबोधित करते हैं। गुरु नानक 20 अगस्त, 1507 को सिक्खों के प्रथम गुरु बने थे। वे इस पद पर 22 सितम्बर, 1539 तक रहे।

## परिचय

पंजाब के तलवंडी नामक स्थान में 15 अप्रैल, 1469 को एक किसान के घर गुरु नानक उत्पन्न हुए। यह स्थान लाहौर से 30 मील पश्चिम में स्थित है। अब यह 'नानकाना साहब' कहलाता है। तलवंडी का नाम आगे चलकर नानक के नाम पर ननकाना पड़ गया। नानक के पिता का नाम कालू एवं माता का नाम तृप्ता था। उनके पिता खत्री जाति एवं बेदी वंश के थे। वे कृषि और साधारण व्यापार करते थे और गाँव के पटवारी भी थे। गुरु नानक देव की बाल्यावस्था गाँव में व्यतीत हुई। बाल्यावस्था से ही उनमें असाधारणता और विचित्रता थी। उनके साथी जब खेल-कूद में अपना समय व्यतीत करते तो वे नेत्र बन्द कर आत्म-चिन्तन में निमग्न हो जाते थे। इनकी इस प्रवृत्ति से उनके पिता कालू चिन्तित रहते थे।

## आरंभिक जीवन

सात वर्ष की आयु में वे पढ़ने के लिए गोपाल अध्यापक के पास भेजे गये। एक दिन जब वे पढ़ाई से विरक्त हो, अन्तर्मुख होकर आत्म-चिन्तन में निमग्न थे, अध्यापक ने पूछा- पढ़ क्यों नहीं रहे हो? गुरु नानक का उत्तर था- मैं सारी विद्याएँ और वेद-शास्त्र जानता हूँ। गुरु नानक देव ने कहा- मुझे तो सांसारिक पढ़ाई की अपेक्षा परमात्मा की पढ़ाई अधिक आनन्दायिनी प्रतीत होती है, यह कहकर निम्नलिखित वाणी का उच्चारण किया- मोह को जलाकर (उसे) घिसकर स्याही बनाओ, बुद्धि को ही श्रेष्ठ कागज बनाओ, प्रेम की कलम बनाओ और चित्त को लेखक। गुरु से पूछ कर विचारपूर्वक लिखो (कि उस परमात्मा का) न तो अन्त है और न सीमा है। इस पर अध्यापक जी आश्चर्यान्वित हो गये और उन्होंने गुरु नानक को पहुँचा हुआ फकीर समझकर कहा- तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो। इसके पश्चात् गुरु नानक ने स्कूल छोड़ दिया। वे अपना अधिकांश समय मनन, ध्यानासन, ध्यान एवं सत्संग में व्यतीत करने लगे। गुरु नानक से सम्बन्धित सभी जन्म साखियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं कि उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के साधु-महत्माओं का सत्संग किया था। उनमें से बहुत से ऐसे थे, जो धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि गुरु नानक ने फारसी का भी अध्ययन किया था। 'गुरु ग्रन्थ साहब' में गुरु नानक द्वारा कुछ पद ऐसे रचे गये हैं, जिनमें फारसी शब्दों का आधिक्य है।

## बचपन

गुरु नानक की अन्तर्मुखी-प्रवृत्ति तथा विरक्ति-भावना से उनके पिता कालू चिन्तित रहा करते थे। नानक को विक्षिप्त समझकर कालू ने उन्हें भैंसे चराने का काम दिया। भैंसे चराते-चराते नानक जी सो गये। भैंसें एक किसान के खेत में चली गयीं और उन्होंने उसकी फसल चर डाली। किसान ने इसका उलाहना दिया किन्तु जब उसका खेत देखा गया, तो सभी आश्चर्य में पड़े गये। फसल का एक पौधा भी नहीं चरा गया था। 9 वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। यज्ञोपवीत के अवसर पर उन्होंने पण्डित से कहा - दया कपास हो, सन्तोष सूत हो, संयम गाँठ हो, (और) सत्य उस जनेऊ की पूरन हो। यही जीव के लिए (आध्यात्मिक) जनेऊ है। ऐ पाण्डे यदि इस प्रकार का जनेऊ तुम्हारे पास हो, तो मेरे गले में पहना दो, यह जनेऊ न तो टूटता है, न इसमें मैल लगता है, न यह जलता है और न यह खोता ही है।

## विवाह

सन 1485 ई. में नानक का विवाह बटाला निवासी, मूला की कन्या सुलक्खनी से हुआ। उनके वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी है। 28 वर्ष की अवस्था में उनके बड़े पुत्र श्रीचन्द का जन्म हुआ। 31 वर्ष की अवस्था में उनके द्वितीय पुत्र लक्ष्मीदास अथवा लक्ष्मीचन्द उत्पन्न हुए। गुरु नानक के पिता ने उन्हें कृषि, व्यापार आदि में लगाना चाहा किन्तु उनके सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हुए। घोड़े के व्यापार के निमित्त दिये हुए रुपयों को गुरु नानक ने साधुसेवा में लगा दिया और अपने पिताजी से कहा कि यही सच्चा व्यापार है। नवम्बर, सन् 1504 ई. में उनके बहनोई जयराम (उनकी बड़ी बहिन नानकी के पति) ने गुरु नानक को अपने पास सुल्तानपुर बुला लिया। नवम्बर, 1504 ई. से अक्टूबर 1507 ई. तक वे सुल्तानपुर में ही रहें अपने बहनोई जयराम के प्रयास से वे सुल्तानपुर के गवर्नर दौलत खॉ के यहाँ मादी रख लिये गये। उन्होंने अपना कार्य अत्यन्त ईमानदारी से पूरा किया। वहाँ की जनता तथा वहाँ के शासक दौलत खर्चें नानक के कार्य से बहुत सन्तुष्ट हुए। वे अपनी आय का अधिकांश भाग गरीबों और साधुओं को दे देते थे। कभी-कभी वे पूरी रात परमात्मा के भजन में व्यतीत कर देते थे। मरदाना तलवण्डी से आकर यहीं गुरु नानक का सेवक बन गया था और अन्त तक उनके साथ रहा। गुरु नानक देव अपने पद गाते थे और मरदाना रवाब बजाता था। गुरु नानक नित्य प्रातः बेई नदी

में स्नान करने जाया करते थे। कहते हैं कि एक दिन वे स्नान करने के पश्चात् वन में अन्तर्धान हो गये। उन्हें परमात्मा का साक्षात्कार हुआ। परमात्मा ने उन्हें अमृत पिलाया और कहा- मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ, मैंने तुम्हें आनन्दित किया है। जो तुम्हारे सम्पर्क में आयेगें, वे भी आनन्दित होंगें। जाओ नाम में रहो, दान दो, उपासना करो, स्वयं नाम लो और दूसरों से भी नाम स्मरण कराओं। इस घटना के पश्चात् वे अपने परिवार का भार अपने श्वसुर मूला को सौंपकर विचरण करने निकल पड़े और धर्म का प्रचार करने लगे। मरदाना उनकी यात्र में बराबर उनके साथ रहा।

### यात्राएँ

गुरु नानक की पहली 'उदासी' (विचरण यात्रा) अक्टूबर, 1507 ई. में 1515 ई. तक रही। इस यात्रा में उन्होंने हरिद्वार, अयोध्या, प्रयाग, काशी, गया, पटना, असम, जगन्नाथ पुरी, रामेश्वर, सोमनाथ, द्वारिका, नर्मदातट, बीकानेर, पुष्कर तीर्थ, दिल्ली, पानीपत, कुरुक्षेत्र, मुल्तान, लाहौर आदि स्थानों में भ्रमण किया। उन्होंने बहुतों का हृदय परिवर्तन किया। ठगों को साधु बनाया, वेश्याओं का अन्तःकरण शुद्ध कर नाम का दान दिया, कर्मकाण्डियों को बाह्याडम्बरों से निकालकर रागात्मिकता भक्ति में लगाया, अहंकारियों का अहंकार दूर कर उन्हें मानवता का पाठ पढ़ाया। यात्र से लौटकर वे दो वर्ष तक अपने माता-पिता के साथ रहे। उनकी दूसरी 'उदासी' 1517 ई. से 1518 ई. तक यानी एक वर्ष की रही। इसमें उन्होंने ऐमनाबाद, सियालकोट, सुमेर पर्वत आदि की यात्र की और अन्त में वे करतारपुर पहुँचे।

तीसरी 'उदासी' 1518 ई. से 1521 ई. तक लगभग तीन वर्ष की रही। इसमें उन्होंने रियासत बहावलपुर, साधुबेला (सिन्धु), मक्का, मदीना, बगदाद, बलख बुखारा, कघबुल, कन्धार, ऐमानाबाद आदि स्थानों की यात्र की। 1521 ई. में ऐमराबाद पर बाबर का आक्रमण गुरु नानक ने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। अपनी यात्राओं को समाप्त कर वे करतारपुर में बस गये और 1521 ई. से 1539 ई. तक वहीं रहे।

### व्यक्तित्व

गुरुनानक का व्यक्तित्व असाधारण था। उनमें पैगम्बर, दार्शनिक, राजयोगी, गृहस्थ, त्यागी, धर्म-सुधारक, समाज-सुधारक, कवि, संगीतज्ञ, देशभक्त, विश्वबन्धु

सभी के गुण उत्कृष्ट मात्र में विद्यमान थे। उनमें विचार-शक्ति और क्रिया-शक्ति का अपूर्व सामंजस्य था। उन्होंने पूरे देश की यात्रा की। लोगों पर उनके विचारों का असाधारण प्रभाव पड़ा। उनमें सभी गुण मौजूद थे। पैगंबर, दार्शनिक, राजयोगी, गृहस्थ, त्यागी, धर्मसुधारक, कवि, संगीतज्ञ, देशभक्त, विश्वबंधु आदि सभी गुण जैसे एक व्यक्ति में सिमटकर आ गए थे। उनकी रचना 'जपुजी' का सिक्खों के लिए वही महत्त्व है, जो हिंदुओं के लिए गीता का है।

### रचनाएँ और शिक्षाएँ

'श्री गुरु-ग्रन्थ साहब' में उनकी रचनाएँ 'महला 1' के नाम से संकलित हैं। गुरु नानक की शिक्षा का मूल निचोड़ यही है कि परमात्मा एक, अनन्त, सर्वशक्तिमान, सत्य, कर्त्ता, निर्भय, निर्वर, अयोनि, स्वयंभू है। वह सर्वत्र व्याप्त है। मूर्ति-पूजा आदि निरर्थक है। बाह्य साधनों से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। आन्तरिक साधना ही उसकी प्राप्ति का एक मात्र उपाय है। गुरु-कृपा, परमात्मा कृपा एवं शुभ कर्मों का आचरण इस साधना के अंग हैं। नाम-स्मरण उसका सर्वोपरि तत्त्व है, और 'नाम' गुरु के द्वारा ही प्राप्त होता है। गुरु नानक की वाणी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से ओत-प्रोत है। उनकी वाणी में यत्र-तत्र तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति की मनोहर झाँकी मिलती है, जिसमें उनकी असाधारण देश-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम परिलक्षित होता है। उन्होंने हिन्दूओं-मुसलमानों दोनों की प्रचलित रूढ़ियों एवं कुसंस्कारों की तीव्र भर्त्सना की है और उन्हें सच्चे हिन्दू अथवा सच्चे मुसलमान बनने की विधि बतायी है। सन्त-साहित्य में गुरु नानक ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने स्त्रियों की निन्दा नहीं की, अपितु उनकी महत्ता स्वीकार की है। गुरुनानक देव जी ने अपने अनुयायियों को जीवन की दस शिक्षाएँ दी-

1. ईश्वर एक है।
2. सदैव एक ही ईश्वर की उपासना करो।
3. ईश्वर सब जगह और प्राणी मात्र में मौजूद है।
4. ईश्वर की भक्ति करने वालों को किसी का भय नहीं रहता।
5. ईमानदारी से और मेहनत कर के उदरपूर्ति करनी चाहिए।
6. बुरा कार्य करने के बारे में न सोचें और न किसी को सताएँ।
7. सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। ईश्वर से सदा अपने लिए क्षमा माँगनी चाहिए।

8. मेहनत और ईमानदारी की कमाई में से जरूरतमंद को भी कुछ देना चाहिए।
9. सभी स्त्री और पुरुष बराबर हैं।
10. भोजन शरीर को जिंदा रखने के लिए जरूरी है पर लोभ-लालच व संग्रहवृत्ति बुरी है।

### भक्त कवि गुरु नानक

पंजाब में मुसलमान बहुत दिनों से बसे थे जिससे वहाँ उनके कट्टर 'एकेश्वरवाद' का संस्कार धीरे - धीरे प्रबल हो रहा था। लोग बहुत से देवी देवताओं की उपासना की अपेक्षा एक ईश्वर की उपासना को महत्त्व और सभ्यता का चिह्न समझने लगे थे। शास्त्रों के पठन पाठन का क्रम मुसलमानों के प्रभाव से प्रायः उठ गया था जिससे धर्म और उपासना के गूढ़ तत्त्व को समझने की शक्ति नहीं रह गई थी। अतः जहाँ बहुत से लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाए जाते थे वहाँ कुछ लोग शौक से भी मुसलमान बनते थे। ऐसी दशा में कबीर द्वारा प्रवर्तित 'निर्गुण संत मत' एक बड़ा भारी सहारा समझ पड़ा।

### निर्गुण उपासना

गुरुनानक आरंभ से ही भक्त थे अतः उनका ऐसे मत की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था, जिसकी उपासना का स्वरूप हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को समान रूप से ग्राह्य हो। उन्होंने घर बार छोड़ बहुत दूर दूर के देशों में भ्रमण किया जिससे उपासना का सामान्य स्वरूप स्थिर करने में उन्हें बड़ी सहायता मिली। अंत में कबीरदास की 'निर्गुण उपासना' का प्रचार उन्होंने पंजाब में आरंभ किया और वे सिख संप्रदाय के आदिगुरु हुए। कबीरदास के समान वे भी कुछ विशेष पढ़े लिखे न थे। भक्तिभाव से पूर्ण होकर वे जो भजन गाया करते थे उनका संग्रह (संवत् 1661) ग्रंथसाहब में किया गया है। ये भजन कुछ तो पंजाबी भाषा में हैं और कुछ देश की सामान्य काव्य भाषा हिन्दी में हैं। यह हिन्दी कहीं तो देश की काव्यभाषा या ब्रजभाषा है, कहीं खड़ी बोली जिसमें इधर उधर पंजाबी के रूप भी आ गए हैं, जैसे चल्या, रह्या। भक्त या विनय के सीधे सादे भाव सीधी सादी भाषा में कहे गए हैं, कबीर के समान अशिक्षितों पर प्रभाव डालने के लिए टेढ़े मेढ़े रूपकों में नहीं। इससे इनकी प्रकृति की सरलता और

अहंभावशून्यता का परिचय मिलता है। संसार की अनित्यता, भगवद्भक्ति और संत स्वभाव के संबंध में उन्होंने कहा है -

इस दम दा मैनुँ कीबे भरोसा, आया आया, न आया न आया।  
 यह संसार रैन दा सुपना, कहीं देखा, कहीं नाहि दिखाया।  
 सोच विचार करे मत मन मै, जिसने ढूँढा उसने पाया।  
 नानक भक्तन दे पद परसे निसदिन राम चरन चित लाया  
 जो नर दुरूख में दुरूख नहिं मानै।  
 सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै  
 नहिं निंदा नहिं अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमाना।  
 हरष सोक तें रहै नियारो, नाहि मान अपमाना  
 आसा मनसा सकल त्यागि कै जग तें रहै निरासा।  
 काम, क्रोध जेहि परसे नाहि न तेहिं घट ब्रह्म निवासा  
 गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्हीं तिन्ह यह जुगुति पिछानी।  
 नानक लीन भयो गोबिंद सो ज्यों पानी सँग पानी।

### प्रकृति चित्रण

गुरु नानक की कविता में कहीं-कहीं प्रकृति का बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है। 'तखारी' राग के बारहमाहाँ (बारहमासा) में प्रत्येक मास का हृदयग्राही वर्णन है। चौर में सारा वन प्रफुल्लित हो जाता है, पुष्पों पर भ्रमरों का गुंजन बड़ा ही सुहावना लगता है। वैशाख में शाखाएँ अनेक वेश धारण करती हैं। इसी प्रकार ज्येष्ठ-आषाढ़ की तपती धरती, सावन-भादों की रिमझिम, दादर, मोर, कोयलों की पुकारें, दामिनी की चमक, सर्पों एवं मच्छरों के दर्शन आदि का रोचक वर्णन है। प्रत्येक ऋतु की विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है।

### पंजासाहब

सिक्ख तीर्थ पेशावर जाने वाले मार्ग पर तक्षशिला से एक स्टेशन आगे तथा हसन अब्दाल से दो मील दक्षिण में पंजासाहब स्थान स्थित है।

### राग और रस

गुरु नानक की वाणी में शान्त एवं शृंगार रस की प्रधानता है। इन दोनों रसों के अतिरिक्त, करुण, भयानक, वीर, रौद्र, अद्भुत, हास्य और वीभत्स रस भी



मिलते हैं। उनकी कविता में जैसे तो सभी प्रसिद्ध अलंकार मिल जाते हैं, किन्तु उपमा और रूपक अलंकारों की प्रधानता है। कहीं-कहीं अन्योक्तियाँ बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं। गुरु नानक ने अपनी रचना में निम्नलिखित उन्नीस रागों के प्रयोग किये हैं- सिरि, माझ, गरुडी, आसा, गूजरी, बडहंस, सोरठि, धनासरी, तिलंग, सही, बिलावल, रामकली, मारू, तुखारी, भरेउ, वसन्त, सारंग, मला, प्रभाती।

### भाषा

भाषा की दृष्टि से गुरु नानक की वाणी में फारसी, मुल्तानी, पंजाबी, सिंधी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के प्रयोग हुए हैं। संस्कृत, अरबी और फारसी के अनेक शब्द ग्रहण किये गये हैं। 1521 तक इन्होंने तीन यात्राचक्र पूरे किए, जिनमें भारत, फारस और अरब के मुख्य-मुख्य स्थानों का भ्रमण किया।

### मृत्यु

गुरु नानक की मृत्यु सन् 1539 ई. में हुई। इन्होंने गुरुगद्दी का भार गुरु अंगददेव (बाबा लहना) को सौंप दिया और स्वयं करतारपुर में 'ज्योति' में लीन हो गए। गुरु नानक आंतरिक साधना को सर्वव्यापी परमात्मा की प्राप्ति का एकमात्र साधन मानते थे। वे रूढ़ियों के कट्टर विरोधी थे। गुरु नानक अपने व्यक्तित्व में दार्शनिक, योगी, गृहस्थ, धर्मसुधारक, समाजसुधारक, कवि, देशभक्त और विश्वबंधु-सभी के गुण समेटे हुए थे।

### विद्यालय जाते हुए बालक नानक

बचपन से इनमें प्रखर बुद्धि के लक्षण दिखाई देने लगे थे। लड़कपन ही से ये सांसारिक विषयों से उदासीन रहा करते थे। पढ़ने लिखने में इनका मन नहीं लगा। 7-8 साल की उम्र में स्कूल छूट गया क्योंकि भगवत्प्रापति के संबंध में इनके प्रश्नों के आगे अध्यापक ने हार मान ली तथा वे इन्हें ससम्मान घर छोड़ने आ गए। तत्पश्चात् सारा समय वे आध्यात्मिक चिंतन और सत्संग में व्यतीत करने लगे। बचपन के समय में कई चमत्कारिक घटनाएं घटी जिन्हें देखकर गाँव के लोग इन्हें दिव्य व्यक्तित्व मानने लगे। बचपन के समय से ही इनमें श्रद्धा रखने वालों में इनकी बहन नानकी तथा गाँव के शासक राय बुलार प्रमुख थे।

नानक के सिर पर सर्प द्वारा छाया करने का दृश्य देखकर राय बुलार का नतमस्तक होना।

इनका विवाह बालपन में सोलह वर्ष की आयु में गुरदासपुर जिले के अंतर्गत लाखौकी नामक स्थान के रहनेवाले मूला की कन्या सुलक्खनी से हुआ था। 32 वर्ष की अवस्था में इनके प्रथम पुत्र श्रीचंद का जन्म हुआ। चार वर्ष पश्चात् दूसरे पुत्र लखमीदास का जन्म हुआ। दोनों लड़कों के जन्म के उपरांत 1507 में नानक अपने परिवार का भार अपने श्वसुर पर छोड़कर मरदाना, लहना, बाला और रामदास इन चार साथियों को लेकर तीर्थयात्रा के लिये निकल पडेघ

### गुरु नानाक देव जी की यात्राएं

ये चारों ओर घूमकर उपदेश करने लगे। 1521 तक इन्होंने चार यात्राचक्र पूरे किए, जिनमें भारत, अफगानिस्तान, फारस और अरब के मुख्य मुख्य स्थानों का भ्रमण किया। इन यात्राओं को पंजाबी में 'उदासियाँ' कहा जाता है।

### दर्शन

नानक सर्वेश्वरवादी थे। मूर्तिपूजा- उन्होंने सनातन मत की मूर्तिपूजा की शैली के विपरीत एक परमात्मा की उपासना का एक अलग मार्ग मानवता को दिया। उन्होंने हिंदू धर्म में फैली कुरीतियों का सदैव विरोध किया। उनके दर्शन में सूफीयों जैसी थी। साथ ही उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थितियों पर भी नजर डाली है। संत साहित्य में नानक उन संतों की श्रेणी में हैं जिन्होंने नारी को बड़प्पन दिया है।

इनके उपदेश का सार यही होता था कि ईश्वर एक है और उनकी उपासना हिंदू मुसलमान दोनों के लिये हैं। मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना को ये अनावश्यक कहते थे। हिंदु और मुसलमान दोनों पर इनके मत का प्रभाव पड़ता था।

### मृत्यु

जीवन के अंतिम दिनों में इनकी ख्याति बहुत बढ़ गई और इनके विचारों में भी परिवर्तन हुआ। स्वयं ये अपने परिवारवर्ग के साथ रहने लगे और मानवता कि सेवा में समय व्यतीत करने लगे। उन्होंने करतारपुर नामक एक नगर बसाया, जो कि अब पाकिस्तान में है और एक बड़ी धर्मशाला उसमें बनवाई। इसी स्थान पर आश्वन कृष्ण 10, संवत् 1597 (22 सितंबर 1539 ईस्वी) को इनका परलोकवास हुआ।

मृत्यु से पहले उन्होंने अपने शिष्य भाई लहना को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया जो बाद में गुरु अंगद देव के नाम से जाने गए।

### कविताएं

नानक अच्छे सूफी कवि भी थे। उनके भावुक और कोमल हृदय ने प्रकृति से एकात्म होकर जो अभिव्यक्ति की है, वह निराली है। उनकी भाषा 'बहता नीर' थी जिसमें फारसी, मुलतानी, पंजाबी, सिंधी, खड़ी बोली, अरबी के शब्द समा गए थे।

### रचनाएँ

गुरु ग्रन्थ साहिब में सम्मिलित 974 शब्द (19 रागों में), गुरुबाणी में शामिल है— जपजी, पकी ळवीज, सोहिला, दखनी ओंकार, आसा दी वार, बारह माह

अन्य गुरु  
 गुरु नानक देव  
 गुरु अंगद देव  
 गुरु अमर दास  
 गुरु राम दास  
 गुरु अर्जुन देव  
 गुरु हरगोबिन्द  
 गुरु हर राय  
 गुरु हर किशन  
 गुरु तेग बहादुर  
 गुरु गोबिंद सिंह

### गुरु ग्रन्थ साहिब

इनके जीवन से जुड़े प्रमुख गुरुद्वारा साहिब/-

1. गुरुद्वारा कंध साहिब—बटाला (गुरुदासपुर) गुरु नानक का यहाँ बीबी सुलक्षणा से 18 वर्ष की आयु में संवत् 1544 की 24वीं जेठ को विवाह हुआ था। यहाँ गुरु नानक की विवाह वर्षगाँठ पर प्रतिवर्ष उत्सव का आयोजन होता है।

2. **गुरुद्वारा हाट साहिब**—सुल्तानपुर लोधी (कपूरथला) गुरुनानक ने बहनोंई जैराम के माध्यम से सुल्तानपुर के नवाब के यहाँ शाही भंडार के देखरेख की नौकरी प्रारंभ की। वे यहाँ पर मोदी बना दिए गए। नवाब युवा नानक से काफी प्रभावित थे। यहीं से नानक को 'तेरा' शब्द के माध्यम से अपनी मंजिल का आभास हुआ था।

3. **गुरुद्वारा गुरु का बाग**—सुल्तानपुर लोधी (कपूरथला) यह गुरु नानकदेवजी का घर था, जहाँ उनके दो बेटों बाबा श्रीचंद और बाबा लक्ष्मीदास का जन्म हुआ था।

4. **गुरुद्वारा कोठी साहिब**—सुल्तानपुर लोधी (कपूरथला) नवाब दौलतखान लोधी ने हिसाब-किताब में गड़बड़ी की आशंका में नानकदेवजी को जेल भिजवा दिया। लेकिन जब नवाब को अपनी गलती का पता चला तो उन्होंने नानकदेवजी को छोड़ कर माफी ही नहीं माँगी, बल्कि प्रधानमंत्री बनाने का प्रस्ताव भी रखा, लेकिन गुरु नानक ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

5. **गुरुद्वारा बेर साहिब**—सुल्तानपुर लोधी (कपूरथला) जब एक बार गुरु नानक अपने सखा मर्दाना के साथ वैन नदी के किनारे बैठे थे तो अचानक उन्होंने नदी में डुबकी लगा दी और तीन दिनों तक लापता हो गए, जहाँ पर कि उन्होंने ईश्वर से साक्षात्कार किया। सभी लोग उन्हें डूबा हुआ समझ रहे थे, लेकिन वे वापस लौटे तो उन्होंने कहा— एक ओंकार सतिनामा। गुरु नानक ने वहाँ एक बेर का बीज बोया, जो आज बहुत बड़ा वृक्ष बन चुका है।

6. **गुरुद्वारा अचल साहिब**—गुरुदासपुर अपनी यात्राओं के दौरान नानकदेव यहाँ रुके और नाथपंथी योगियों के प्रमुख योगी भांगर नाथ के साथ उनका धार्मिक वाद-विवाद यहाँ पर हुआ। योगी सभी प्रकार से परास्त होने पर जादुई प्रदर्शन करने लगे। नानकदेवजी ने उन्हें ईश्वर तक प्रेम के माध्यम से ही पहुँचा जा सकता है, ऐसा बताया।

7. **गुरुद्वारा डेरा बाबा नानक**—गुरुदासपुर जीवनभर धार्मिक यात्राओं के माध्यम से बहुत से लोगों को सिख धर्म का अनुयायी बनाने के बाद नानकदेवजी रावी नदी के तट पर स्थित अपने फार्म पर अपना डेरा जमाया और 70 वर्ष की साधना के पश्चात सन् 1539 ई. में परम ज्योति में विलीन हुए।

ईसवी संवत् 2019, सिक्खों के आदि गुरु, गुरुनानक जी, के जन्म का 550 प्रकाश पर्व या वर्ष है। 9 नवम्बर, 2019 (शनिवार) के दिन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पंजाब के गुरुदासपुर जिले के डेरा बाबा नानक चेकपोस्ट से

गुरुनानक जी के पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त के नारोवाल जिले में स्थित समाधि-स्थल पर निर्मित गुरुद्वारा करतारपुर साहिब या गुरुद्वारा दरबार साहिब को जोड़ने वाले 4.5 किलोमीटर लम्बे गलियारे के जरिये लगभग 500 तीर्थयात्रियों को पहले जत्थे को हरी झंडी दिखाकर रवाना किया।

आदिग्रन्थ सिख संप्रदाय का प्रमुख धर्मग्रन्थ है। इसे 'गुरु ग्रंथ साहिब' भी कहते हैं। इसका संपादन सिख सम्प्रदाय के पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी ने किया। गुरु ग्रन्थ साहिब जी का पहला प्रकाश 16 अगस्त 1604 को हरिमंदिर साहिब अमृतसर में हुआ। 1705 में दमदमा साहिब में दशमेश पिता गुरु गोविंद सिंह जी ने गुरु तेगबहादुर जी के 116 शब्द जोड़कर इसको पूर्ण किया, इसमें कुल 1430 पृष्ठ हैं।

गुरुग्रन्थ साहिब में मात्र सिख गुरुओं के ही उपदेश नहीं हैं, वरन् 30 अन्य हिन्दू संत और अलंग धर्म के मुस्लिम भक्तों की वाणी भी सम्मिलित है। इसमें जहां जयदेवजी और परमानंदजी जैसे ब्राह्मण भक्तों की वाणी है, वहीं जाति-पाति के आत्महंता भेदभाव से ग्रस्त तत्कालीन हिंदु समाज में हेय समझे जाने वाली जातियों के प्रतिनिधि दिव्य आत्माओं जैसे कबीर, रविदास, नामदेव, सैण जी, सघना जी, छीवाजी, धन्ना की वाणी भी सम्मिलित है। पांचों वक्त नमाज पढ़ने में विश्वास रखने वाले शेख फरीद के श्लोक भी गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज हैं। अपनी भाषायी अभिव्यक्ति, दार्शनिकता, संदेश की दृष्टि से गुरु ग्रन्थ साहिब अद्वितीय है। इसकी भाषा की सरलता, सुबोधता, सटीकता जहां जनमानस को आकर्षित करती है। वहीं संगीत के सुरों व 31 रागों के प्रयोग ने आत्मविषयक गूढ़ आध्यात्मिक उपदेशों को भी मधुर व सारग्राही बना दिया है।

गुरु ग्रन्थ साहिब में उल्लेखित दार्शनिकता कर्मवाद को मान्यता देती है। गुरुवाणी के अनुसार व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार ही महत्त्व पाता है। समाज की मुख्य धारा से कटकर संन्यास में ईश्वर प्राप्ति का साधन ढूंढ रहे साधकों को गुरुग्रन्थ साहिब सबक देता है। हालांकि गुरु ग्रन्थ साहिब में आत्मनिरीक्षण, ध्यान का महत्त्व स्वीकारा गया है, मगर साधना के नाम पर परित्याग, अकर्मण्यता, निश्चेष्टता का गुरुवाणी विरोध करती है। गुरुवाणी के अनुसार ईश्वर को प्राप्त करने के लिए सामाजिक उत्तरदायित्व से विमुख होकर जंगलों में भटकने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर हमारे हृदय में ही है, उसे अपने आन्तरिक हृदय में ही खोजने व अनुभव करने की आवश्यकता है। गुरुवाणी ब्रह्मज्ञान से उपजी आत्मिक शक्ति को लोककल्याण के लिए प्रयोग करने की प्रेरणा देती

है। मधुर व्यवहार और विनम्र शब्दों के प्रयोग द्वारा हर हृदय को जीतने की सीख दी गई है। साँचारूसन्दूक सिख संप्रदाय

### परिचय

सिखों का पवित्र धर्मग्रंथ जिसे उनके पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ने सन् 1604 ई. में संगृहीत कराया था और जिसे सिख मतानुयायी 'गुरुग्रंथ साहिब जी' भी कहते एवं गुरुवत् मानकर सम्मानित किया करते हैं।

नक्शे में गुरु ग्रन्थ साहिब के विभिन्न बानीकारों के जन्म स्थान दर्शाए गए हैं।

'आदिग्रंथ' के अंतर्गत सिखों के प्रथम पाँच गुरुओं के अतिरिक्त उनके नवें गुरु और 14 'भगतों' की बानियाँ आती हैं। ऐसा कोई संग्रह संभवतः गुरु नानकदेव के समय से ही तैयार किया जाने लगा था और गुरु अमरदास के पुत्र मोहन के यहाँ प्रथम चार गुरुओं के पत्रदि सुरक्षित भी रहे, जिन्हें पाँचवें गुरु ने उनसे लेकर पुनः क्रमबद्ध किया तथा उनमें अपनी ओर कुछ 'भगतों' की भी बानियाँ सम्मिलित करके सबको भाई गुरुदास द्वारा गुरुमुखी में लिपिबद्ध करा दिया। भाई बन्नों ने फिर उसी की प्रतिलिपि कर उसमें कतिपय अन्य लोगों की भी रचनाएँ मिला देनी चाहीं जो पीछे स्वीकृत न कतिपय अन्य लोगों की भी रचनाएँ गोविंदसिंह ने उसका एक तीसरा 'बीड़' (संस्करण) तैयार कराया जिसमें, नवम गुरु की कृतियों के साथ-साथ, स्वयं उनके भी एक 'सलोक' को स्थान दिया गया। उसका यही रूप आज भी वर्तमान समझा जाता है। इसकी केवल एकाध अंतिम रचनाओं के विषय में ही यह कहना कठिन है कि वे कब और किस प्रकार जोड़ दी गई।

'ग्रंथ' की प्रथम पाँच रचनाएँ क्रमशः (1) 'जपुनीसाणु' (जपुजी), (2) 'सोदरू' महला1, (3) 'सुणिबड़ा' महला1, (4) 'सो पुरुखु', महला 4 तथा (5) सोहिला महला के नामों से प्रसिद्ध हैं और इनके अनंतर 'सिरीराग' आदि 31 रागों में विभक्त पद आते हैं जिनमें पहले सिखगुरुओं की रचनाएँ उनके (महला1, महला2 आदि के) अनुसार संगृहीत हैं। इनके अनंतर भगतों के पद रखे गए हैं, किंतु बीच-बीच में कहीं-कहीं 'बारहमासा', 'थिंती', 'दिनैरिण', 'घोडीआं', 'सिद्ध गोष्ठी', 'करहले', 'बिरहडे', 'सुखमनी' आदि जैसी कतिपय छोटी बड़ी विशिष्ट रचनाएँ भी जोड़ दी गई हैं, जो साधारण लोकगीतों के काव्यप्रकार उदाहृत करती हैं। उन रागानुसार क्रमबद्ध पदों के अनंतर सलोक

सहस्र कृती, 'गाथा' महला 5, 'फुनहे' महला 5, चउबोलें महला 5, सवैए सीमुख वाक् महला 5 और मुदावणी महला 5 को स्थान मिला है और सभी के अंत में एक रागमाला भी दे दी गई है। इन कृतियों के बीच-बीच में भी यदि कहीं कबीर एवं शेख फरीद के 'सलोक' संगृहीत हैं तो अन्यत्र किन्हीं 11 पदों द्वारा निर्मित वे स्तुतियाँ दी गई हैं, जो सिख गुरुओं की प्रशंसा में कही गई हैं और जिनकी संख्या भी कम नहीं है। 'ग्रंथ' में संगृहीत रचनाएँ भाषावैविध्य के कारण कुछ विभिन्न लगती हुई भी, अधिकतर सामंजस्य एवं एकरूपता के ही उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

आदिग्रंथ को कभी-कभी 'गुरुबानी' मात्रा भी कह देते हैं, किंतु अपने भक्तों की दृष्टि में वह सदा शरीरी गुरुस्वरूप है। अतः गुरु के समान उसे स्वच्छ रेशमी वस्त्रों में वेष्टित करके चांदनी के नीचे किसी ऊँची गद्दी पर 'पधराया' जाता है, उसपर चंवर ढलते हैं, पुष्पादि चढ़ाते हैं, उसकी आरती उतारते हैं तथा उसके सामने नहा धोकर जाते और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं। कभी-कभी उसकी शोभायात्रा भी निकाली जाती है तथा सदा उसके अनुसार चलने का प्रयत्न किया जाता है। ग्रंथ का कभी साप्ताहिक तथा कभी अखंड पाठ करते हैं और उसकी पंक्तियों का कुछ उच्चारण उस समय भी किया करते हैं जब कभी बालकों का नामकरण किया जाता है, उसे दीक्षा दी जाती है तथा विवाहदि के मंगलोत्सव आते हैं अथवा शवसंस्कार किए जाते हैं। विशिष्ट छोटी बड़ी रचनाओं के पाठ के लिए प्रातः काल, सायंकाल, शयनवेला जैसे उपयुक्त समय निश्चित हैं और यद्यपि प्रमुख संगृहीत रचनाओं के विषय प्रधानतः दार्शनिक सिद्धांत, आध्यात्मिक साधना एवं स्तुतिगान से ही संबंध रखते जान पड़ते हैं, इसमें संदेह नहीं कि 'आदि ग्रंथ' द्वारा सिखों का पूरा धार्मिक जीवन प्रभावित है। गुरु गोविंदसिंह का एक संग्रहग्रंथ 'दसम ग्रंथ' नाम से प्रसिद्ध है, जो 'आदिग्रंथ' से पृथक एवं सर्वथा भिन्न है।

### भाषा एवं लिपि

गुरु ग्रन्थ साहिब का लेखन गुरुमुखी लिपि में हुआ है। गुरु ग्रन्थ साहिब की गुरुवाणियाँ अधिकांश पंजाब प्रदेश में अवतरित हैं और इस कारण जन-साधारण उनकी भाषा को पंजाबी के सदृश अनुमान करता है, जबकि ऐसी बात नहीं है। श्री गुरुग्रन्थ साहिब की भाषा आधुनिक पंजाबी भाषा की अपेक्षा हिन्दी भाषा के अधिक समीप है और हिन्दी-भाषी को पंजाबी भाषी की अपेक्षा

गुरु-वाणियों का आशय अधिक बोधगम्य है। दूसरी ओर यद्यपि श्री दसम ग्रन्थ की भी लिपि गुरुमुखी है, परन्तु इसकी भाषा प्रायः अपभ्रंश हिन्दी में कविताबाद्ध है। इसकी भाषा पंजाबी-भाषियों के लिये और अधिक दुरूह किन्तु हिन्दी-भाषियों के लिये भलीभाँति जानी-पहचानी है। गुरु ग्रन्थ साहिब की भाषा को 'सन्त भाषा' भी कहते हैं जिसमें बहुत सी भाषाओं, बलियों और उपबोलियों का मिश्रण है जिसमें लहिंदी पंजाबी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, संस्कृत और फारसी आदि प्रमुख हैं।